सचित्र

जगमगाते हीरे

(प्रथम भाग)

लेखक

पं० विद्याभास्कर शुक्ल

साहित्यालङ्कार

प्रकाशक

छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला

दारागज, प्रयाग ।



Printed by Krishna Ram Mehta at the Leader Press,
and
blished by Chhatra Hitkari-Pustakmala, Daraganj Allahabad



दो शब्द

हिन्दी-ससार मे इस समय पुस्तको की कमी नही। उपन्यास, कहानी आदि की नित्य नई नई पुस्तकें देखने मे आती हैं। हम कैसे कहे कि देश की उन्नति तथा प्रगति को उनसे कुछ सहारा न मिलता होगा, परन्तु यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि किसी देश के उत्थान मे उस देश के महापुरुषो के चरित्र जितने सहायक होते है उतने अन्य ग्रथ नही। हमारे जीवन मे नित्य ही छोटी २ ऐसी घटनाएँ होती रहती है जिनपर ध्यान देना तो दूर हम कभी विचार भी नही करते। किन्तु वे ही छोटी २ घटनाएँ किन्ही को महापुरुष के रूप मे परिवर्तित कर देती है। उन मनोरञ्जक और जीवन-पथ-प्रदर्शक घटनाओ और महापुरुषो के चरित्रो का जानना अत्यन्त आवश्यक है। फिर ऐसे समय मे जब ससार के साथ भारतवर्ष भी स्वतत्रता की ओर तेजी से दौड रहा है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के विचार से यह पुस्तक लिखी गई है। अब इसकी सफलता, असफलता पाठको के हाथ है।

लेखक

क्रम-सूची

जगमगाते हीरे

१—श्री राजा राममोहन राय



ब ? पृथ्वी पर किसी प्रकार की आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हे पूरी करने के लिए किसी शक्ति का प्रादुर्भाव अवश्य होना है। ससार की सभी बातो मे इस अटूट नियम का प्रयोग होते देखा गया है। मानव समाज मे आवश्यकेतानुसार धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति करने के ही लिए महापुरुषो का जन्म होता है। राजा राममोहन राय का जन्म भी इस भारत भूमि मे इसीलिए हुआ।

राजा राममोहन राय का जन्म सन् १७७४ ई० में हुगली जिले के पास एक गाव मे हुआ था। उन के पिता का नाम राय रमाकान्त और माता का नाम तारिणी देवी था। 'राय' की उपाधि उनके खानदान मे नवाबी राज्य से चली आती थी। उनकी माता बडी ही बुद्धिमती, सुशीला, और धर्मानुरागिणी स्त्री थीं उसी के अनुसार बचपन से ही उन्हे भी अपने धर्म में बडी श्रद्धा थी, अपने गृह देवता के वे बडे भक्त थे। बुद्धि तो ऐसी तीव्र थी कि जब पाठशाला मे पढने बैठाए गए तो लोगो को आश्चर्य होता था। फारसी की शिक्षा पिता ने घर पर ही दी। नौ वर्ष

क्रम-सूची

जगमगाते हीरे

१—श्री राजा राममोहन राय



ब ॰ पृथ्वी पर किसी प्रकार की आवश्यकताऍ होती हैं, उन्हे पूरी करने के लिए किसी शक्ति का प्रादुर्भाव अवश्य होता है। ससार की सभी बातो मे इस अटूट नियम का प्रयोग होते देखा गया है। मानव समाज मे आवश्यकेतानुसार धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति करने के हो लिए महापुरुषो का जन्म होता है। राजा राममोहन राय का जन्म भी इस भारत भूमि मे इसीलिए हुआ।

राजा राममोहन राय का जन्म सन् १७७४ ई० मे हुगली जिले के पास एक गाव मे हुआ था। उन के पिता का नाम राय रमाकान्त और माता का नाम तारिणी देवी था। 'राय' की उपाधि उनके खानदान मे नवाबी राज्य से चली आती थी। उनकी माता बडी ही बुद्धिमती, सुशीला, और धर्मानुरागिणी स्त्री थी उसी के अनुसार बचपन से ही उन्हे भी अपने धर्म मे बडी श्रद्धा थी, अपने गृह देवता के वे बडे भक्त थे। बुद्धि तो ऐसी तीव्र थी कि जब पाठशाला मे पढने बैठाए गए तो लोगो को आश्चर्य होता था। फारसी की शिक्षा पिता ने घर पर ही दी। नौ वर्ष

की व्यवस्था मे पटना भेज दिया। वहाँ रह कर उन्होने फारसी, अरबी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। रेखागणित का खूब अध्ययन किया। फारसी के प्रसिद्ध कवियो के काव्य-ग्रन्थो से उन्हे विशेष अनुराग था जो यावज्जीवन रहा।

इस शिक्षा के पश्चात् बालक राममोहन सस्कृत पढने के लिए काशी भेजे गए। १२-१३ वर्ष की ही आयु मे ही उन्होने वहाँ सस्कृत मे भी बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। वहा से आकर घर पर ही रहने लगे और धर्म सम्बन्धी बातो के विचार मे समय बिताने लगे। शनै २ प्रचलित धर्म से उनका विश्वास निर्बल होने लगा। यह देख कर उनके पिता को मत-भेद होने के साथ ही दुख भी हुआ। इसी समय राममोहन ने 'हिन्दुओ की पौत्तलिक धर्म-प्रणाली' नामक पुस्तक लिखी जिस से पिता इतने क्रुद्ध हो गए कि उन्हे घर से निकाल दिया।

अब तो निडर राममोहन भारत के भिन्न २ स्थानो मे भ्रमण करने लगे। जहाँ जाते वहीं की भाषा सीख कर वहाँ के धर्म ग्रन्थो का अध्ययन और मनन करते। इस प्रकार घूमते घामते व १६ वर्ष की उम्र मे हिमालय पार कर तिब्बत पहुँचे। वहाँ के लामाओ की अवतारवाद की पराकाष्ठा की अद्भुत प्रथा देख कर उन्हे बडा बुरा मालूम हुआ। बस, उन्होने अकुतोभयता के साथ जोरो से इसका प्रतिवाद किया। लामा उनसे इतने क्रुद्ध हो गए कि मृत्यु-दण्ड देने का प्रयत्न करने लगे। पर वहाँ की स्त्रियो ने उस समय उन का साथ दिया और बराबर साथ रह कर उनकी रक्षा की। उनका तो कहना है कि भारत मे विदेशी राज्य, धर्म का प्रचार होने के कारण मै तिब्बत चला गया पर दूसरे लोग कहते है कि बौद्ध ग्रन्थो का अनुसन्धान करने के लिए वे वहा गए।

राय रमाकान्त ने पुत्र को घर से निकाल तो दिया पर पीछे उन्हे बडा पश्चात्ताप हुआ, दिन रात दु खी रहने लगे। लोगो को इधर उधर पुत्र की तलाश मे भेजा। देश विदेश मे भ्रमण कर राममोहन चार वर्ष बाद पिता के भेजे हुए एक आदमी के साथ घर आए। पुत्र के घर आजाने से सब को बड़ा आनन्द हुआ।

घर मे रहते हुए धार्मिक विषयो मे पिता के साथ प्राय राम मोहन का वादविवाद हुआ करता था। वे अपना तमाम समय धार्मिक पुस्तको के अवलोकन मे ही बिताते थे और इस विषय मे उन्होने गहरी छान-बीन करके निश्चय कर लिया था कि हिन्दू धर्म के कुसस्कार और कुप्रथाओ को नष्ट करना होगा। वे अपने अध्ययन मे इतने दृढ-प्रतिज्ञ थे कि एक बार सस्कृत वाल्मीकीय रामायण पढने बैठ गए, सब से कह दिया—"जब तक मैं पाठ पूरा न कर लूँ कोई विघ्न न करे"। प्रात काल से बैठे शाम हो गई पर अन्न जल ग्रहण तभी किया जब सातो काण्ड पाठ पूरा कर लिया।

उस समय सती-प्रथा प्रचलित थी। बगाल मे इसका रिवाज ज़ोरो से था। पति के मरने पर जीवित स्त्री पति के साथ चिता मे जला दी जाती थी। यह दृश्य कितने ही निष्ठुर हृदय देखते होगे। धू धू करते हुए चितानल मे असहाय अवला झोक दी जावे, उठ कर भागने का प्रयत्न करे तो सम्बन्धी लोग बाँसो से कस कर उसे दबाए रहे। ढोल बाजे नगाडे आदि इसलिए बजाए जावे कि उसका आर्त्तनाद दूसरो के कानो मे प्रवेश न कर सके। हमारे चरित नायक से यह भयङ्कर दृश्य न देखा गया। उन्होने प्रतिज्ञा की कि "मैं यावज्जीवन इस वीभत्स प्रथा को निर्मूल करने का प्रयत्न करूँगा"।

आवश्यक समझ कर २२ वर्ष की आयु मे उन्होने अंग्रेजी

की अवस्था मे पटना भेज दिया। वहाँ रह कर उन्होने फारसी, अरबी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। रेखागणित का खूब अध्ययन किया। फारसी के प्रसिद्ध कवियो के काव्य-ग्रन्थो से उन्हे विशेष अनुराग था जो यावज्जीवन रहा।

इस शिक्षा के पश्चात् बालक राममोहन सस्कृत पढने के लिए काशी भेजे गए। १२-१३ वर्ष की ही आयु मे ही उन्होने वहाँ सस्कृत मे भी बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। वहा से आकर घर पर ही रहने लगे और धर्म सम्बन्धी बातो के विचार मे समय बिताने लगे। शनै २ प्रचलित धर्म से उनका विश्वास निर्बल होने लगा। यह देख कर उनके पिता को मत-भेद होने के साथ ही दुख भी हुआ। इसी समय राममोहन ने 'हिन्दुओ की पौत्तलिक धर्म-प्रणाली' नामक पुस्तक लिखी जिस से पिता इतने क्रुद्ध हो गए कि उन्हे घर से निकाल दिया।

अब तो निडर राममोहन भारत के भिन्न २ स्थानो मे भ्रमण करने लगे। जहाँ जाते वही की भाषा सीख कर वहाँ के धर्म ग्रन्थो का अध्ययन और मनन करते। इस प्रकार घूमते घामते वे १६ वर्ष की उम्र मे हिमालय पार कर तिब्बत पहुँचे। वहाँ के लामाओ की अवतारवाद की पराकाष्ठा की अद्भुत प्रथा देख कर उन्हे बडा बुरा मालूम हुआ। बस, उन्होने अकुतोभयता के साथ जोरो से इसका प्रतिवाद किया। लामा उनसे इतने क्रुद्ध हो गए कि मृत्यु-दण्ड देने का प्रयत्न करने लगे। पर वहाँ की स्त्रियो ने उस समय उन का साथ दिया और बराबर साथ रह कर उनकी रक्षा की। उनका तो कहना है कि भारत मे विदेशी राज्य, धर्म का प्रचार होने के कारण मै तिब्बत चला गया, पर दूसरे लोग कहते है कि बौद्ध ग्रन्थो का अनुसन्धान करने के लिए वे वहा गए।

राय रमाकान्त ने पुत्र को घर से निकाल तो दिया पर पीछे उन्हे बडा पश्चात्ताप हुआ, दिन रात दु खी रहने लगे। लोगों को इधर उधर पुत्र की तलाश मे भेजा। देश विदेश मे भ्रमण कर राममोहन चार वर्ष बाद पिता के भेजे हुए एक आदमी के साथ घर आए। पुत्र के घर आजाने से सब को बड़ा आनन्द हुआ।

घर मे रहते हुए धार्मिक विषयो मे पिता के साथ प्राय राम मोहन का वादविवाद हुआ करता था। वे अपना तमाम समय धार्मिक पुस्तको के अवलोकन मे ही बिताते थे और इस विषय मे उन्होंने गहरी छान-बीन करके निश्चय कर लिया था कि हिन्दू धर्म के कुसस्कार और कुप्रथाओ को नष्ट करना होगा। वे अपने अध्ययन मे इतने दृढ-प्रतिज्ञ थे कि एक बार सस्कृत वाल्मीकीय रामायण पढने बैठ गए, सब से कह दिया—"जब तक मै पाठ पूरा न कर लूँ कोई विघ्न न करे"। प्रात काल से बैठे शाम हो गई पर अन्न जल ग्रहण तभी किया जब सातो काण्ड पाठ पूरा कर लिया।

उस समय सती-प्रथा प्रचलित थी। बगाल मे इसका रिवाज ज़ोरो से था। पति के मरने पर जीवित स्त्री पति के साथ चिता मे जला दी जाती थी। यह दृश्य कितने ही निष्ठुर हृदय देखते होगे। धू धू करते हुए चितानल मे असहाय अबला झोंक दी जावे, उठ कर भागने का प्रयत्न करे तो सम्बन्धी लोग बॉसो से कस कर उसे दबाए रहे। ढोल बाजे नगाडे आदि इसलिए बजाए जावे कि उसका आर्त्तनाद दूसरो के कानो मे प्रवेश न कर सके। हमारे चरित नायक से यह भयङ्कर दृश्य न देखा गया। उन्होने प्रतिज्ञा की कि "मै यावज्जीवन इस वीभत्स प्रथा को निर्मूल करने का प्रयत्न करूँगा"।

आवश्यक समझ कर २२ वर्ष की आयु मे उन्होने अग्रेजी

पढना प्रारम्भ किया और थोडे ही समय मे उसमे भी अच्छी योग्यता प्राप्त करली।

इसके पश्चात् वे सरकारी मुहर्रिरी करने लगे। नौकरी करने से पूर्व उन्होने क्लेक्टर से लिखित प्रतिज्ञा कराली कि जब मै किसी कार्य से आपके सामने आऊँ तो आप मुझे बैठने को आसन दें। अपने कार्यों से उन्होने अफसरो को ऐसा सन्तुष्ट किया कि कुछ ही समय पश्चात् वे सरिश्तेदार बना दिए गए। उन्होने तेरह वर्ष नौकरी की। पर मन न लगा। जिसका ध्यान धार्मिक कुप्रथाओं के नष्ट करने मे लगा हुआ है वह गुलामी कहा तक कर सकता है। अस्तु, नौकरी छोड दी। धार्मिक सुधार का कार्य प्रारम्भ कर दिया। बाह्य पाखण्डी अपना भण्डा फोड होते देख उन के कार्य मे तरह २ के राडे अटकाने लगे, और वृथा कष्ट देने लगे परन्तु राय के असाधारण धैर्य ने किसी प्रकार हार न मानी। उन्होने इस असद्भाव का बदला सद्भाव के द्वारा लेने का निश्चय किया, और जी जान से धर्म-सस्कार, समाज-सस्कार, राजनैतिक सस्कार और साहित्य की उन्नति मे जुट गए। जहाँ बहुत से लोग उन के दुश्मन हो गए वहाँ उन के असाधारण गुणो, स्पष्ट सत्यवादिता, निर्भीकता आदि से आकृष्ट हो कर कितने ही विद्वान और सत्यान्वेषी सज्जन मित्र और शिष्य भी हो गए। उन की सुशीलता, नम्रता और विद्वत्ता देख कर प्रेम करने को मनुष्य वाध्य हो जाते थे।

राजा राममोहन राय ने विचारा कि पुस्तको द्वारा सत्य का प्रचार भली भाँति हो सकता है। बस "वेदान्त सूत्र" का भाष्य बङ्गला, हिन्दी, अगरेजी में प्रकाशित किया और उस मे पुष्टि के साथ इस बात का प्रतिपादन किया कि समस्त हिन्दू शास्त्र एक मात्र परब्रह्म की उपासना बतलाते है, प्रचलित प्रथाओ से उन मे बडा अन्तर है। इसके बाद क्रमश वेदान्त सार, उपनिषदों के भाष्य,

ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थेर लक्षण, गायत्री अर्थ, अनुष्ठान, ब्रह्मोपासना, प्रार्थना पत्र आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित को , जिन मे प्रचलित हिन्दू धर्म की अनिष्ट-कारिणी रूढियो की लम्बी खबर ली और उन लोगो के सिद्धान्त का खण्डन किया जो निराकार ईश्वर की उपासना सन्यासियो के लिए और देवी-देवताओ की उपासना गृहस्थो के लिए बतलाते हैं। अकाट्य प्रमाणो और युक्तियो द्वारा अपनी पुस्तको मे केवल एक ब्रह्मापासना सिद्ध को।

उनके इस प्रकार के आन्दोलन से हिन्दू समाज मे बडी हल-चल मच गई। शास्त्रार्थ के लिए हिन्दू पण्डितो ने बडी २ पुस्तके लिखी। जिनका उत्तर राजा राममोहन ने बडी युक्ति, सहन-शीलता और प्रमाणा के साथ छपवाया। प्रतिवादी निरुत्तर हो गए। बहुतो ने चिढकर कई ऐसी पुस्तके प्रकाशित करवाई जिन मे तथ्य बाते तो कम, कटु वाक्य और निदा ही विशेष रूप से थी, पर हमारे चरित-नायक ने अपूर्व शाति भाव से क्रमश सब को निरुत्तर और पराजित किया।

राजा राम मोहन राय ने दूसरे धर्म्मों का खूब अध्ययन किया था। जब उन्हो ने देखा कि ईसाई लोग छोटे २ ट्रैक्टो, दूसरे धर्म्मों की निन्दा, और गरीबो को धन के लालच आदि अनुचित कार्रवाइयो से अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं, तो ईसाई धर्म की पोल खोलनी शुरू की। बाइबिल का खूब अध्ययन किया और उनके समाचार पत्रो मे निकले हुए सवादो, ट्रैक्टो का मुह-तोड उत्तर देना प्रारम्भ किया, कडी आलोचना की। हिन्दुओ की दुर्बलता के विषय मे लिखा कि " एक तो हम ससार मे पराधीन विख्यात हैं, दूसरा कारण जाति भेद और तीसरा कारण है हिन्दू-जाति की स्वाभाविक धीरता, कोमलता और अहिसा-वृत्ति। हिसा विमुखता

ही हिन्दुओं के राजनैतिक दुर्भाग्य का प्रधान कारण है। जिससे हम दूसरो से शासित हैं"।

उन्हो ने सब को एक धर्म और एक ब्रह्म की उपसना मे लाने के लिए एक 'आत्मीय सभा' स्थापित की। इस मे वेद पाठ और ब्रह्म सगीत द्वारा ब्रह्मोपासना होता थी। इसके पश्चात् 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की जिसका उद्देश्य था—कोई भी व्यक्ति शुद्ध श्रद्धा भाव से इस समाज-मन्दिर मे उपासना के लिए आ सकता है, जाति, सम्प्रदाय, धर्म, पद इत्यादि का कुछ विचार न होगा। चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय का मनुष्य क्यो न हो, परमेश्वर की उपासना के लिए यहाँ सब को समान अधिकार है। ब्रह्म समाज कुछ समय खूब फूला फला।

राजा राममोहन राय और उनके साथियो के अनवरत परि-श्रम और सच्ची लगन से ब्रह्म ज्ञान का प्रचार उत्तरोत्तर बढने लगा, कितने ही लोग आकर 'ब्रह्म समाज' मे दीक्षित हुए।

सती प्रथा के प्रबल विरोध में राय ने पहले शास्त्रो और, वैदिक ग्रन्थो का भली भाति अध्ययन तथा मनन किया, इधर उधर खूब शङ्काएँ निवृत्त कीं। इसके बाद उसे समूल नष्ट करने के लिए वे कटि-बद्ध हो गए। पुस्तके लिख कर, शास्त्रार्थों व्याख्यानो आदि के द्वारा प्रबल आदोलन खडा कर दिया और सरकार से कडे नियम बनवा कर सदैव के लिए इस अमानुषीय प्रथा का अन्त कर दिया। स्त्रियों से उन्हे हार्दिक सहानुभूति थी। उनको दशा सुधारने के लिए उन्होने अनेक प्रयत्न किए। लोग कहते हैं कि आध्यात्मिक और राजनैतिक विचारो मे परस्पर विरोध है पर राजा राममोहन राय के राजनैतिक विचार भी बहुत उच्च थे। बाल्यकाल ही से उन मे प्रबलता आगई थी। जहाँ कोई बात आपडती, वे दुखित किसानो की दर्दनाक कहानियो का दृश्य

सामने खींचते हुए सरकार की कडी आलोचना करते थे। स्पष्ट और सत्य बात कहने मे ज़रा भी न हिचकते थे। साथ ही उन्होंने इस बात का भी भरपूर प्रयत्न किया कि भारतवर्ष मे अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्त्य ज्ञान का प्रचार किया जावे ताकि भारतीय शिक्षित और सम्पन्न हो। विलायत यात्रा मे वे इङ्गलैण्ड, फ्रान्स आदि देशो को गए, वहाँ अपनी अपूर्व प्रतिभा और पाण्डित्य से योरोप निवासियो पर अच्छी धाक जमा ली। सब जगह उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। अन्त मे अपने शान्तिमय जीवन मे धर्मोपदेश करते हुए वहा के ब्रिस्टल नगर मे सन् १८३३ ई० मे १० ११ दिन बीमार रह कर व स्वर्ग सिधारे।

राजा राममोहन राय का मस्तिष्क बहुत बडा और मेधा-शक्ति बडी प्रबल थी। शरीर कान्तिमान और सुन्दर था। शारीरिक बल साधारण लोगो से कही अधिक देखा जाता था। एक दिन मे वे १२-१३ सेर दूध पी जाते थे और उसके ऊपर भोजन भी करते थे।

उनके जीवन की अनेक घटनाएँ उनकी विद्वत्ता, बुद्धिमानी, दया, उदारता, वाक्चातुरी, शारीरिक बल, निर्भीकता आदि गुणो का परिचय देती है।

एक दिन एक पण्डित ने आकर उनसे कहा, "मै आप के साथ तन्त्र शास्त्र विषय मे अमुक ग्रन्थ पर विचार करना चाहता हूँ"। राय ने वह ग्रन्थ देखा तक न था "बहुत अच्छा" कहते हुए कहा "कृपा कर कल आइए"। पण्डित जी के जाते ही उन्होंने वह ग्रन्थ तुरन्त मगवाया और दत्तचित्त होकर उसे एकबार ही पढ कर हृदयङ्गम कर लिया। दूसरे दिन जब पण्डित जी आए तो जोरों से शास्त्रार्थ हुआ। अन्त मे राममोहन के पाडित्य तथा तर्क-शक्ति से परास्त हो कर पडित जी अपने घर चले गए।

एक बार राजा राममोहन राय के पास दक्षिण से वहाँ की भाषा में ही एक पत्र आया जिसे उन्हे दूसरे आदमी से पढवाना पडा। साथ ही यह इच्छा हुई कि इस भाषा को तो सीखना चाहिए। बस तीन ही महीने मे उस भाषा को सीख कर उसके पत्र का उत्तर उसी भाषा मे दिया।

हम लोग छोटे बालको को गोद में लेने और उनके साथ खेलने मे हिचकते है तथा भद्दा समझते है। पर राजा राममोहन राय मे यह बात न थी। वे छोटे बालको से अतिशय प्रेम करते थे और प्राय उनके साथ खेला करते थे। प्रेम के कारण बालक अक्सर उनके घर जाया करते थे। वे उनके साथ बहुत हिलमिल कर खेला करते और उनके प्रति अपनी प्रसन्नता प्रगट करते थे। लडके उनके घर नित्य आया करे इसके लिए उन्होने अपने घर मे एक झूला डाल रक्खा था। लडके इस झूले मे झूलते थे, राजा राममोहन राय उन्हे झुलाते थे। कुछ देर पश्चात् "अब मेरी बारी है" कह कर आप उसमे बैठ जाते थे और लडके उन्हे झुलाया करते थ। एक दिन राय इसी प्रकार झूल रहे थे कि एक प्रसिद्ध पण्डित मिलने आ गए और यह दृश्य देख कर बोले "वाह, महाशय जी, आप यह क्या कर रहे हैं?" राय ने तुरन्त उत्तर दिया "मै विलायत जाना चाहता हूँ। सुना है समुद्र मे तूफान आने पर जहाज बहुत हिलने लगता है जिससे यात्रियो को घुमनी का रोग हो जाता है, यात्री बेचैन हो जाते है। इस प्रकार झूलने का अभ्यास कर लेने से उस घुमनी की सभावना जाती रहेगी।"

राजा राममोहन राय को गरीबो का बडा ख्याल था। निर्धनो का कष्ट वे देख नही सकते थे। राय के गाँव मे ही बाजार लगता था। लोग अनाज इत्यादि बेचने को लाते थे।

राय साहब के ज्येष्ठ पुत्र ने दूकानदारो से चुगी लेना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि सभी बाजारो मे चुगी ली जाती थी फिर भी निर्धन दूकानदारो को चुगी देना कष्टकर प्रतीत होने लगा। उन लोगो ने पुत्र से प्रार्थना की कि चुगी न ली जावे पर उन्होने कुछ ध्यान न दिया। एक दिन लाचार हो कर वे सब राजा राम-मोहन के पास पहुँचे, बोले—"राजा साहब, हम निर्धन आदमी है किसी तरह अपनी गुजर बसर करते है, चाहते है, हमसे चुगी न ली जाया करे।" राजा साहब ने अपने दोनो हाथ सिर पर पटक कर कहा—"हे भगवान! ये बेचारे दुखी आदमी साधारण चीज़े बेच कर किसी तरह अपनी गुज़र चलाते हैं। इनके ऊपर भी यह अत्याचार! रक्षा करो, रक्षा करो।" उनके पुत्र यह हाल देख कर बहुत लज्जित हुए और उसी दिन से चुगी उठा दी।

राजा राममोहन राय विपत्ति पडने पर भी कभी अधीर न होते थे। एकबार उनके कुछ मित्रो ने सोचा कि ये बडे ब्रह्मज्ञानी बनते है, देखे दु ख मे बेचैन होते है या नही। राय का पुत्र दूसरे नगर मे रहता था। उस समय डाकखाने न थे। हरकारा पत्र ले जाता था। इन लोगो ने एक हरकारे को सिखा पढा कर एक जाली पत्र दे कर राजा राममोहन को दे आने को कहा जिस मे पुत्र की मृत्यु का समाचार था। ये लोग पहले से ही उनके पास जा बैठे। हरकारे ने आकर पत्र दिया। पत्र पढते ही राममोहन का मुख मडल उदास हो गया। ३-४ मिनट तक वे चुपचाप बैठे रहे फिर बिना किसी से कुछ कहे सुने अपने कार्य मे लग गए मानो कोई समाचार ही नही मिला। यह दृश्य देख कर वे लोग अवाक् रह गए, बहुत लज्जित हुए और अन्त में उनके पैरो पड कर सच्चा हाल सुनाते हुए क्षमा प्रार्थना की।

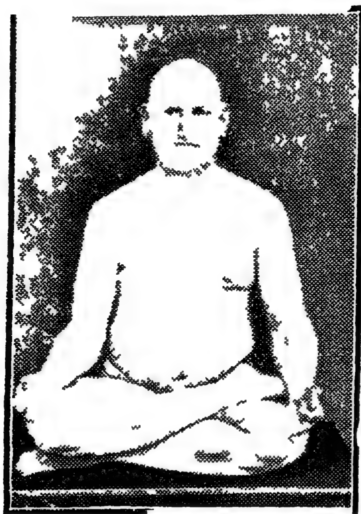
एक गरीब महाशय नित्य प्रति राजा राममोहन के पास धर्मो-

पदेश सुनने के लिए आया करते थे। वे थे बहुत निर्धन। कपडे बहुत मैले हो गए थे और फट से गए थे। नए कपडे बनवाने मे असमर्थ थे। धर्मोपदेश सुनने की इच्छा रहते हुए भी राय की उच्चता और अपना दरिद्र वेश देख कर उन्होने वहा जाना बन्द कर दिया। जब वे कुछ दिन न गए तो राजा राममोहन राय को मालूम हुआ कि अमुक महाशय ने आना क्यो बन्द कर दिया। उन्होने उसी समय उन्हे बुलाया और बडे आदर से अपने पास बैठा कर कहा—"आप यह अच्छी तरह समझ ले कि मैं कभी कपडे या रूप रङ्ग देख कर आदमी को नही पहचाना करता हूँ। निस्सकोच आप रोज आया करे।"

राजा राममोहन राय ने नियम बना रक्खा था कि प्रार्थना के समय समाज मे सब लोग चपकन और पगडी पहन कर आया कर। इसी प्रकार सब लोग आया भी करते थे। एक दिन प्रसिद्ध स्वर्गीय द्वारिका नाथ जज दफ़्तर से लौटे तो देर हो जाने के कारण दफ़्तर के ही कपडे पहने समाज मे चले गए और प्रार्थना मे सम्मिलित हुए। यह देख कर राजा राममोहन राय को बडा दु ख हुआ। वे सकोच शील व्यक्ति थे इसलिए खुद उन से कुछ न कह कर एक और मित्र से कहा—"आप भाई द्वारिका नाथ को समझा दे कि समाज का नियम क्या है।"

एकदिन राजा राममोहन राय बाजार मे घूमने जा रहे थे। थोडी दूर जाने पर उन्हो ने दूर से देखा कि कोई तरकारी वाला ज़मीन से बोझ उठा कर बार २ अपने सिर पर रखने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु बोझा भारी होने के कारण वह उसे नही उठा पाता। राममोहन जी तुरन्त उसके पास पहुँचे और उसका बोझ उठा कर उसके सिर पर रख दिया।

जगमगाते हीरे



महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

२–महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती



सार के जितने महा पुरुष हुए है उन्ही मे बाल-ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती की भी गणना है। यदि उस समय स्वामी जी का जन्म न हुआ होता तो आज भारतवर्ष की क्या दशा होती यह बतलाना मुश्किल है।

ऋषि दयानन्द का जन्म सन् १८२४ ई० मे गुजरात प्रान्त के मोरवी नामक ग्राम मे हुआ था। आदि नाम था मूलशकर, उनके पिता अम्बाशकर औदीच्य ब्राह्मण और एक प्रतिष्ठित ज़मीदार थे। आज कल की भाँति उस समय अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार न था। स्कूल कालेज न थे। सामयिक प्रथा के अनुसार स्वामी जी को बाल्यावस्था मे रुद्री और शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन कराया गया। स्वामी जी की बुद्धि कुशाग्र थी, जो पढाया जाता, शीघ्र ही याद कर लेते। १२ वर्ष की अवस्था मे उन्होने सस्कृत की छोटी मोटी पुस्तके, अमर कोष आदि याद करके सस्कृत की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

उनके पिता कट्टर शैव-भक्त थे। उसी के अनुसार उन्हे भी शिक्षा दी गई। जिससे धर्म-निष्ठा मे ये अपने पिता माता के ही तुल्य थे। चौदह वर्ष की अवस्था मे माता के मना करने पर भी पिता ने बालक मूलशकर को शिवरात्रि का निर्जल व्रत कराया। चूँकि मूलशकर की निष्ठा सच्ची थी इससे बडी सावधानी से व्रत की साधना की, रात्रि को जागरण किया। शिवालय मे पिता तथा अन्य पुजारी आदि सो गए पर मूलशकर

आँखो म पानी लगा लगाकर जागते रहे कि कही व्रत भङ्ग न हो जाव। अर्ध रात्रि मे जब सब खर्राटे भर रहे थे तो एक चूहा आकर शिव जी पर चढे प्रसाद को खाने लगा और उन पर खूब कूदने फाँदने लगा। मूलशकर यह सब दृश्य बडे आश्चर्य के साथ देख रहे थे। चूहे के चले जाते ही उनके चित्त मे विचार उठा—"क्या यही सर्व-शक्ति मान, विश्वम्भर महादेव हैं जो अपने ऊपर से उपद्रवी चूहे को भी नहीं भगा सकते। वेद शास्त्रो मे इन्हीं की बडी महिमा गाई है ?" इत्यादि।

इस विचार के उत्पन्न होते ही उन्हो ने अपने पिता का जगाया और सब हाल सुनाते हुए शकित प्रश्न किया। पिता न डॉटने फाटकारने के अतिरिक्त कोई सन्तोष-जनक उत्तर न दिया और सो गए। मूलशकर ने उसी समय घर जाकर माता को जगाया और भोजन किया। उनके चित्त से मूर्तिपूजा की ओर स श्रद्धा हट गई। उन्होंने निश्चय किया—जब तक शिव जी क प्रत्यक्ष दर्शन न कर लूँगा, कोई व्रत नियम न करूँगा।

२० वर्ष को उम्र में स्वामी जी के चाचा की मृत्यु से उनके हृदय को बहुत चोट लगी। वैराग्य उत्पन्न हो गया। कोई जानकार पुरुष मिलता तो उससे यही प्रश्न करते—"मनुष्य अमर किस तरह हो सकता है ?" उत्तर मिलता—"योगाभ्यास से"। इस उत्तर से स्वामी जी को योगाभ्यास की शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने योगी की खोज के लिए पर्यटन करना निश्चय करते हुए पिता की आज्ञा चाही। पिता क्यो आज्ञा देने लगे। वे उन्हे फॉसने के विचार से विवाह की युक्ति भिडाने लगे। स्वामी जी यह देख कर घर से भाग खडे हुये और साधुओं का इधर उधर सग करने लगे लेकिन यथार्थ साधु न मिलने से चित्त को सन्तोष न हुआ। स्वामी जी की श्रद्धा इस प्रकार के साधुओं से हटने सी

लगी। इसी समय उनके पिता ने उन्हे आ पकडा और सिपाहियो के पहरे मे घर ले चले। रास्ते मे रात को जब सब सिपाही आदि सो गये तो स्वामी जी फिर भाग निकले।

दूसरे दिन, दिन भर भूखे प्यासे एक पेड पर बैठे रहे कि घर वाले न पकड पावें। रात मे आगे बढे और अलकनन्दा के किनारे जाकर विश्राम लिया। इस ओर उन्हे अनेक साधुओ के दर्शन हुए और उन्हो ने इन्हे अच्छी २ योग की क्रियाए बतलाईं। अलक-नन्दा के तट पर पहुँच कर पहिले तो स्वामी जी ने सोचा कि इसी बरफ में गल कर प्राण विसर्जित कर दे और ससार के झझटो से पार हो जावे। फिर सोचा—आत्म-हत्या तो महा-पाप है, ऐसा क्यो करे। विद्याध्ययन करके ही इस जीवन को सफल क्यो न करे। यह निश्चय करके स्वामी जी घूमते फिरते मथुरा आए। मथुरा आने से पूर्व ही मूलशकर ने सन्यास ले लिया था और मूलशकर से स्वामी दयानन्द हो गए थे।

मथुरा में एक ८१ वर्ष के बूढे धुरन्धर विद्वान् साधु रहते थे, जिनका नाम था दण्डी विरजानन्द। विरजानन्द सरस्वती प्रज्ञा-चक्षु थे। अपने समय के सस्कृत और व्याकरण के अद्वि-तीय पडित थे। साथ ही स्वभाव के बडे तीखे और रूखे थे। ऋषि दयानन्द उनके पास ललाट पर भस्म लगाए, माला धारण किए, गेरुआ वस्त्र पहिने, कमण्डलु लिए पहुँचे। स्वामी विरजानन्द उनकी बातचीत से प्रसन्न हो गए और २॥ वर्ष मे ही अपनी विद्या उन्हे दे दी।

स्वामी दयानन्द ने विद्या समाप्त कर सोचा—"गुरु जी को क्या गुरु दक्षिणा दूँ? मै साधु हूँ मेरे पास है ही क्या, यह भी विरक्त साधु हैं, लेंगे क्या? इन्हे लौंग ज्यादा प्रिय है वही क्यो न दूँ?" यह विचार कर स्वामी जी

सवा सेर लोंगें और नारियल लेकर दण्डी विरजानन्द के पास पहुँचे। बोले—"महाराज गुरु दक्षिणा लीजिए और आशीर्वाद दीजिए।" दण्डी जी बोले—"बच्चा, क्या गुरु दक्षिणा है।" स्वामी जी—"महाराज, मैं आपको क्या देने योग्य हू। लौंग नारियल है।" गुरू जी—"मुझे यह गुरु दक्षिणा नही चाहिए।" स्वामी जी—"महाराज, मेरे पास और क्या है जो मैं आपको दूँ।" गुरू जी—"बच्चा, मै तुझ से वही चीज माँगना चाहता हू जो तेरे पास है, तू दे सकता है, बोल, देगा ?" स्वामी जी—"यह शरीर ही आपका है फिर जा चीज मेरे पास होगी उसे देने से इन्कार कब है ?" दडी गुरू विरजानन्द ने प्रसन्न होकर कहा—"जा, बेटा! इस देश में जो अविद्या अधकार फैला है, जो ढोंग पाखण्ड फैला है उसे विद्या रूपी प्रकाश से मिटा। पढा लिखा सार्थक कर, यही माँगता हू। और कुछ नही चाहिए।" स्वामी जी ने चरणों पर सिर रक्खा। बोले—"महाराज, जो आज्ञा, ऐसा ही करूँगा। आशीर्वाद दीजिए।"

उन्हीं दिनो हरिद्वार कुम्भ का मेला था। स्वामी जी आगरा, ग्वालियर, जैपुर, मेरठ आदि घूमते हुए हरिद्वार पहुँचे। अपार नर नारियों की भीड थी। जगह जगह ढोंग पुज रहा था। यह दृश्य देख कर स्वामी जी के नेत्रों में आँसू आ गए वे सोचने लगे—"गुरु-आज्ञा का पालन मै कैसे करूँगा।" हिम्मत हार रहे थे। रात्रि मे स्वप्न हुआ, मानो कोई कह रहा है—"पुत्र, कायरता दूर कर, हिम्मत कर, सब कुछ कर सकेगा। क्या अकेला सूर्य फैले हुए ससार के अधकार को नष्ट नही कर देता ?" स्वामी जी प्रात काल उठे। मुख पर अपूर्व छटा थी, औदास्य भाव नष्ट हो चूका था।

पताका गाड दी, जिस पर लिख दिया गया "पाखड-खडिनी पताका।" स्वामी जी ने व्याख्यान देना शुरू कर दिया। कई व्याख्यान दिए।

कुछ हलचल मच गई। मेला समाप्त होते ही स्वामी जी कुछ दिन एकान्त सेवन के लिए चले गए। एकान्त सेवन के बाद प्रचार-कार्य मे प्रवृत्त हुए। प्रत्येक शहर मे घूम घूमकर व्याख्यानों और शास्त्रार्थों की धूम मचा दी। घूमते घूमते स्वामी जी काशी पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्होने हलचल पैदा कर दी। सनातन धर्म की जिन रूढियो को वे पाखड समझते थे उनका खडन करना शुरू कर दिया। काशी-वासी पडित बहुत क्रुद्ध हुए। निश्चय हुआ कि शास्त्रार्थ हो। शास्त्रार्थ का दिन निश्चित हुआ। निश्चित दिन पर खूब भीड एकत्रित हुई। नामी नामी सब पडित जमा हुए, स्वत काशी-महाराज भी पधारे। दोपहर पश्चात् शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। उतनी बडी सहस्रो मनुष्यो की भीड मे उस (चिरस्मरणीय) दिन को निर्भय दयानन्द अकेले पडितो के प्रश्नो का उत्तर देते जाते थे। विषय था "वेदो मे मूर्त्ति पूजा है या नहीं?" स्वामी जी का कहना था कि वेदो मे मूर्त्ति पूजा नही है। स्वामी विशुद्धानन्द सरीखे दिग्गज विद्वान् उपस्थित थे पर उन लोगों ने जब देखा कि अब हम हारे तो और साथी लोग हू हल्ला शोर गुल कर के उठ खडे हुए और चल दिए। एक बार स्वामी जी ने काशी मे लगातार बाईस व्याख्यान दिए।

इसी प्रकार स्वामी जी जहाँ जहाँ जाते, व्याख्यान देते और शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज कर देते। जहाँ शास्त्रार्थ होता वहाँ उनके विपक्षियो को हारना पडता। कलकत्ते, बबई मे उनके कितने ही व्याख्यान हुए।

स्वामी जी के प्रचार का वृत्तान्त इतना है कि यदि सब लिखा जाय तो एक बहुत बडा पोथा तैयार हो जाय क्योकि भारत का कोई शहर ऐसा नही छोडा जिसमे कई कई बार न गए हो और शास्त्रार्थ न किया हो तथा व्याख्यान न दिया हो। स्वामी जी के भाषण मे अद्भुत शक्ति थी। उनकी बाते धार्मिक और अलकारिक होती थी। श्रोता तल्लीन हो जाते थे। चूकि स्वामी जी उस समय सत्य कहने मे देश के विरुद्ध थे इसलिए विरोधी अपने स्वार्थ मे बाधा देख कर प्राय उनको अपमानित करने, मारने आदि का प्रयत्न किया करते थे। कई बार तो उन्हे विष दिया गया। पर वे जान जाने पर न्यौली क्रिया द्वारा उसे निकाल फेकते थे।

एक बार पूना मे धूम धाम से उनका जुलूस निकालने का प्रबन्ध हुआ। विरोधिया ने पहले ही सवेरे से गदभानन्दाचार्य की सवारी निकाली और तरह तरह के अपशब्द बकते हुए शाम तक उसे शहर मे घुमाते रहे। स्वामी जी का जुलूस निकलने पर वे लोग अड बड बकने लगे। कुछ उत्तर न मिलने पर ईंट, पत्थर, कीचड़ आदि फेंकने लगे। पुलिस के प्रबन्ध करने पर ये उपद्रव शान्त हुए। अनेक स्थाना पर स्वामी जी के प्रति ऐसे ही उपद्रव किए जाते थे पर स्वामी जी इसकी किञ्चिन्मात्र भी परवाह न करते थे न किसी से रिपोर्ट करते थे। बल्कि हँसते हुए कह देते थे "इसका उपाय है प्रसन्नता और शान्ति, सब आप ही शान्त हो जायगे।" उनके विरोधी मुँह पर उन्हे गाली देते थे पर वे हँस कर ही नम्रता पूर्वक उन्हे उत्तर देते थे।

जिन दिनो ऋषि दयानन्द भारत के नव्य सगठन मे लग रहे थे उन्ही दिनो दिल्ली मे बड़े धूम-धाम से पहला दरवार हुआ। स्वामी दयानन्द जो ऐसे अवसर से कब चूकनेवाले थे। वहाँ

पहुँचे और भारत के भिन्न भिन्न स्थानो से आए हुए बडे बडे सभी लोगो से मिल कर अपने विचार भली भाँति प्रकट किए।

यही नही कि स्वामी जी ने सनातन धर्म की रुढियो का ही खण्डन किया हो। उन्होने ईसाई और मुहम्मदीय धर्म की भी जो बाते असत्य प्रतीत हुई, लम्बी खबर ली। ईसाई पादरियो और मौलवियो से भी जगह जगह बहस मुबाहिसे हुए। उन लोगो को हार माननी पडी।

स्वामी जी अपने सिद्धान्तो के आगे बडी से बडी सम्पत्ति को तुच्छ समझते थे। उदयपुर के महाराजा साहब ने उनसे कहा—"स्वामो जी आप मूर्त्ति-पूजा का खण्डन छोड दे और महादेव की गद्दी के महन्त बन जावे।" स्वामी जी ने उत्तर दिया "यदि मुझे सम्पत्ति की इच्छा होती तो प्यारे माँ बाप को क्यो छोडता, घर की जमीदारी क्यो लात मारता। मेरे जीवन का उद्देश्य महन्तो को गद्दी को हटाना है न कि महन्त बनना।"

स्वामी जी हिन्दू-समाज को कष्ट नही देना चाहते थे। वे उसका सुधार करना चाहते थे। वे दुख-सागर ससार को सदाचार, अविद्या, अज्ञानता और पाखड से दूर करके सुख-सागर बनाना चाहते थे। उन्होने आर्य्य-समाज के नियमो मे बताया है कि शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति करना विशेष बल है, उसे अवश्य करना चाहिए। स्वामी जी का सिद्धान्त था कि निराकार ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। मृतको का श्राद्ध न कर जीवित पितरो की सेवा करना ही श्राद्ध है। वर्ण-व्यवस्था जन्म से न मान कर कर्म से मानना चाहिए। पीर, पैगम्बर का मानना बुरा है। भाँति भाँति के देवी-देवताओ की उपासना करना गलती है। टोने टोटके करना मूर्खता है मध्यकाल की बनी पुस्तकों मे प्राय बहुत सी बाते स्वार्थवश

झूठी लिखी गई है। अस्तु, जो बाते बुद्धि मे नही समाती प्रकृति नियम से विरुद्ध और असभव है, उन्हे न मानना चाहिए। एक जबर्दस्त पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' लिख कर स्वामी जी ने उसमे इन सब बाता का अच्छा विवेचन किया है।

बालको की साधारण शिक्षा से लेकर वेदो के भाष्य तक बहुत सी अत्यन्त उपयागी उपयोगी पुस्तके स्वामी जी ने लिखी है।

आर्य्यसमाज का ससार व्यापी कार्य आज जो हम को दिखलाई पड रहा है वह ऋषि दयानन्द के ही बोए और सीचे हुए वृक्ष का फल है। स्वामी जी ने अपने उद्देश्यो मे बताया है "सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोडने मे हमेशा तत्पर रहा। यदि मेरी भी कोई बात सचमुच झूठ समझो तो उसे कदापि न मानो।"

इसीलिए पूर्व मे हमने कहा है कि यदि उस समय स्वामी जी उत्पन्न न हुए होते तो हिन्दू जाति की न मालूम आज क्या दशा होती। आधे से यादा हिन्दू मुसलमान और ईसाई दिखलाई पडते। बचे हुए हिन्दुओ में भी सब पीर पैगम्बर आदि के कारण दूसरो को ही अपना जीवन सौंपे होते। अछूत हम से दूर हो गए होते। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह ने जाति को नष्ट कर दिया होता। पुनर्विवाह के प्रचार न होने से विधवाओ की क्या दशा होती यह लिखना व्यर्थ है। कोई धर्मशास्त्रों, वैदिक ग्रन्थो का अनुशीलन न करता। तमाम हिन्दू जाति आँखे मीचे वैदिक ग्रन्थो को नीचे दबाए बेहोश पडी रहती। ऊपर कुल्हाडा चलता रहता।

स्वामी जी ने केवल धार्मिक ही क्रान्ति नही की। उन्होने देश के अन्यान्य विषयो पर भी पर्याप्त ध्यान दिया। गोरक्षा के लिए उन्होने काफी आन्दोलन किया। गो-करुणानिधि किताब

लिखी। राष्ट्र भाषा हिन्दी के स्वामी जी प्रबल समथक थे गुजराती होते हुए भी उन्हाने अपनी समस्त पुस्तकें हिन्दी मे ही लिखी। हिन्दी-प्रचार की इच्छा से अन्य भाषाओ मे अपनी पुस्तको का अनुवाद अपने जीवित रहते नही होने दिया। वेदो का भाष्य भी हिन्दी मे किया। देश का शिक्षा पर भी उन्होने काफी विवेचन किया। बतलाया कि आज कल की शिक्षा किस प्रकार की है, पहिले किस प्रकार की थी और होनी किस प्रकार चाहिए। इस के लिए उन्होने जन्म से ही शिक्षा का विस्तृत ढग बतलाया है। हिन्दू-जाति की स्त्री-दशा पर भी बहुत ध्यान दिया है। विदेश यात्रा के भी स्वामी जी पूर्ण पक्षपाती थे। खाने पीने मे वे कोई भेद भाव न रखना चाहते थे। केवल शुद्धता चाहते थे। देश को वे ब्रह्मचर्य्य की विशेष आवश्यकता बतलाते थे। उनके राजनैतिक विचार भी बहुत उच्च थे। वे स्वराज्य और स्वतन्त्रता के पूरे समर्थक थे। लोकसत्तात्मक राज्य के प्रति-पादक थे और उसकी रीति प्राचीन ढग पर अच्छी बतलाते थे। इसी प्रकार स्वदेशी वस्तु-प्रचार के भी पूर्ण समर्थक थे। कहते थे—अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से, अपने देश का बुरा राज्य कही अच्छा है।

स्वामी जी जिन उद्देश्यों और सिद्धान्तो का प्रचार करते थे उन्ही के अनुरूप उनका जीवन था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। सच्चे देश-सुधारक और धर्मोपदेष्टा थे। जोधपुर मे वैदिक-धर्म प्रचार के ही कारण, द्वेषियों ने सिखा पढा कर स्वामी जी के रसोइया मे दूध मे पिसा हुआ काँच मिलवा कर उनको पीने को दिलवा दिया। स्वामी जी पी गए। काँच का असर होते ही सारे शरीर मे फफोले निकल आए। स्वामी जी अजमेर पहुँचे। वहाँ सब प्रकार से उनकी चिकित्सा की गई। पर काँच ने अपना काम

पूरा कर दिया था। सब चिकित्साएँ व्यर्थ हुईं। ६० वर्ष की अवस्था मे दिवाली के दिन नव्य भारत को मानसिक मुक्ति प्रदान करने वाले, हिन्दू-समाज के सरक्षक, धर्मवीर स्वामी दयानन्द सरस्वती इस नश्वर शरीर को छोड कर अनन्त की गोद मे चले गये।

स्वामी जी के रसोइया को रुपये का लालच दिला कर विष दिलाया गया था। जब स्वामी जी को यह मालूम हुआ और रसोइया भी घबडा गया तो स्वामी जी ने उसे बुलाया और पूछा—"तूने यह पाप क्यो किया ? उसने आँखो मे आँसू भर कर कहा—"रुपये के लालच से।" स्वामी जी ने पूछा—"कितने रुपयो का लोभ तुझे दिया गया ?" रसोइया—"पाँच सौ रुपये का।" स्वामी जी ने कहा—"पर अब तो तू पकडा जायगा और तुझे फाँसी की सजा होगी, रुपये भी न भोग सकेगा और जीवन से भी हाथ धोएगा, क्यो ?" रसोइया—"महाराज मैंने बडा पाप किया है अब तो वह फल मेरे करम मे ही बदा है।" स्वामी जी ने पास मे रक्खी हुई पाँच सौ रुपयो की थैली उठाई और रसोइये को हाथ मे देते हुए कहा—"ले जिस लोभ से तूने यह पाप किया वह इच्छा पूरी कर, इसे लेकर चुपचाप जल्दी कही पहाडो की तरफ भाग जा। देर न कर वर्ना पकडा जायगा फिर मै न बचा सकूँगा।" रसोइया रुपया लेकर भाग गया।

स्वामी दयानन्द पूरे गुरु-भक्त थे। गुरु विरजानन्द के कुल कार्य वे अपने हाथ से करते थे। घर साफ करते, नहलाते, कोपीन धोते, चरण चाँपते सभी काम करते थे।

दडी विरजानन्द प्रज्ञाचक्षु तो थे ही। एक दिन स्वामी जी ने घर मे बुहारी लगाई और जल्दी मे कूडा बाहर न फेक सके। वही

देहरी के पास जमा कर दिया। दडी जी जब वहाँ से निकले तो कूडे पर पैर पड गया। उन्होने स्वामी जी को बुलाया। पास आने पर बिना कुछ पूछेताछे डडा उठा कर ज़ोर से मारा और बोले ' कूडा यहाँ क्यो जमा किया ? " स्वामी जी ने सिर्फ इतना कहा " महाराज, अपराध हुआ क्षमा करे। " डडा कन्धेपर लगा था। कन्धा फूल आया। स्वामी जी अपने अपराध पर पश्चात्ताप करने लगे और रात मे जब पैर दाब चुक तो बोले—" गुरू महाराज, मेरे तो ज़रा भी चोट नही लगी, पर डडा घुमाने से कहीं आपके हाथ मे तो चोट नही आगई ? मुझ से बडा कसूर हुआ। अब कभी ऐसा न करूँगा। "

दूसरे लोगो को जब पिटने का यह हाल मालूम हुआ तो उन्होने दडी जी के पास जाकर कहा—" दडी जी, स्वामी दयानन्द को आप इस प्रकार न मारा कीजिए। उसका कधा बहुत फूल आया है। सब शिष्यो मे एक वही होनहार, यशस्वी, विद्वान् और आप का सच्चा सेवक है। यदि कही रुष्ट हो कर चला गया तो न केवल आपको कष्ट होगा, बल्कि एक। सुयोग्य शिष्य आपके हाथ से निकल जायगा। " स्वामो दयानन्द को मालूम हुआ कि लोगो ने मेरे विषय मे ऐसा ऐसा कहा है तो स्वामी जी उन लोगो से बडे बिगडे, डाँटा फटकारा और कहा—" खबरदार, यदि आप लोग मेरे विषय मे आगे से इस प्रकार कुछ उनसे कहेगे, तो ठीक न होगा। "

स्वामी जी निर्भीक वक्ता थे। वे कोई बात स्पष्ट कहने से कभी न चूकते थे। एक बार बरेली मे व्याख्यान दे रहे थे। कलेक्टर साहब भी उसमे उपस्थित थे। स्वामी जी ने बहुत सी ऐसी खरी और सच्ची-सच्ची बातें कही जो कलेक्टर साहब के विरुद्ध पड़ती थीं। सब के चले जाने पर कुछ शुभचिन्तको ने

स्वामी जी से कहा—"कलेक्टर साहब के सामने आप उनके विरुद्ध की, इस प्रकार की, बाते न कहा करें, नही तो मुमकिन है वे पीछे कोई झगडा खड़ा कर दें। स्वामी जी उस समय तो चुप रहे। दूसरे दिन फिर व्याख्यान हुआ। कलेक्टर साहब इस दिन भी आए। स्वामी जी ने उन्हे आया देख कर कहा—"लोग मुझ से कहते हैं कि कलेक्टर साहब आया करते हैं। व्याख्यान मे सच्ची बाते मत कहा कीजिए। जरा वैसे बोला कीजिए। अब मैं स्पष्ट कहता हूँ कि कलेक्टर, कमिश्नर क्या यदि राजा महाराजा भी आवे तो भी सच्ची बात कहने से मै बाज़ न आऊँगा। सत्य के कहने के लिये मुझे मृत्यु का भी दण्ड मिले तो सहर्ष स्वीकार करूँगा। लेकिन सत्य के कहने से न रुकूँगा। आत्मा अजर अमर है। कौन सा कलेक्टर या कमिश्नर है जो मेरी आत्मा को मार सकता है या तलवार से काट सकता है।" कलेक्टर साहब इस स्पष्ट वादिता से नाराज़ होने के बजाय और अधिक खुश हुए तथा स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की।

एक बार स्वामी जी के विरोधियो ने उनके रसोइये को भडका कर भोजन मे विष दिलवा दिया। यह बात स्वामी जी जान गए। उन्होने तो न्यौली क्रिया कर के उस ज़हर को निकाल दिया परन्तु रसोइया डर के मारे भाग खडा हुआ। स्वामी जी के कुछ भक्तो को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होने उसकी रिपार्ट जाकर तहसीलदार को दी। तहसीलदार ने रसोइये का पता लगा कर उसे पकड मगाया। हथकडी बेडी डाल दी गई। तहसीलदार सिपाहियों सहित उसको साथ लेकर प्रसन्न हाते हुए स्वामी जी के पास आये और बोले-"महाराज अपराधी सामने खडा है। यह दुष्ट आपको ज़हर देकर भाग गया था अब पकड पाया है।

आज्ञा दीजिए इसे क्या सज़ा दी जाय" ? स्वामी जी ने हँसते हुए उत्तर दिया " भाई तुम से ज़हर देने की बात किसने कही ? मैंने तो कोई रिपोर्ट की नही। फिर इस बेचारे को क्यों पकडा ? खैर इसको इसी समय छोड दो। मैं ससार को क़ैद कराने नही, कैद से छुडाने आया हू," । स्वामी जी के वचन सुनते ही सब निस्तब्ध हो उनकी ओर देखने लगे। आहिस्ते से अपराधी की हथकडी बेडी खोल दी गई। वह बजाय भागने के स्वामी जी के चरणो मे पडा दिखलाई पडा।

स्वामी जी धर्म-प्रचार मे बिलकुल निर्भीक थे। कभी उन्ह सत्य के प्रचार मे जीवन की आशङ्का पैदा ही नही हुई। एक बार एक स्थान पर पाखण्डी पडिता से स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी ने उन्हे बुरी तरह से परास्त किया। इसपर वे लोग इतने बिगडे कि स्वामी जी को मारने के लिए दो तोन आदमी तयार किए। जब स्वामी जी के भक्तो को यह पता लगा तो उन्होने आकर उनसे निवेदन किया कि " महाराज, आप बाहर अकेले न निकला करे। न अकेले ठहरे। चलिए बस्ती में चलकर हम लागों के घर ठहरिए क्योकि दुष्ट लोग आपको मारने की फिराक मे है, सभव है अकेले पाकर समय असमय आक्रमण कर बैठे"।

स्वामी जी खिलखिला कर हॅसे और बोले—" क्या खूब, आज आप लोग कहते है कि अकेले रहा न करे, कल कहेगे कि घर ही से न निकला करे, परसो कहेगे टट्टी भी बाहर न जाया करे। फिर कहेगे कि धर्म-प्रचार ही करना बन्द कर दीजिए। भला इस प्रकार कैसे काम चलेगा। यदि मै इस प्रकार की धमकियों से डरने लगूँ तो काम ही न चले। अस्तु, आपलोग इस विषय मे मेरी चिन्ता न कीजिए। मै अपनी रक्षा आप कर लूँगा।"

तीन चार दिन बाद एक आदमी तलवार लेकर स्वामी जी को आधी रात के समय मारने आया। आहट पाते ही स्वामी जी की नीद खुल गई। उन्होने जोर से जो 'हुँ' की हुकार की तो वह डरकर भागा। उस दिन से उनके पास किसी दुष्ट ने आने की हिम्मत तक न की।

स्वामी जी जब जोधपुर धर्म-प्रचारार्थ जाने को तयार हुए तो लोगो ने समझाया "वहाँ के लोग बडे दुष्ट होते हैं, पूरे उजड्ड होते है, फिर रियासती घिस घिस ठहरी। बचकर आना मुश्किल होगा। वे दुष्ट आपको मार डालेंगे, हम लोगो की प्रार्थना है कि आप वहाँ जाने का विचार तक छोड दे।" स्वामी जी ने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया—"मै जोधपुर सत्य-धर्म-प्रचार को जाऊँगा, अवश्य जाऊँगा। चाहे वहाँ के लोग मेरी एक एक अँगुली की पोर के सौ सौ टुकडे कर के मोमबत्ती की तरह भले ही जला दे पर मै प्रचार से नही रुक सकता।" शाहपुराधीश ने कहा "यदि आप नही मानते तो जाइए परन्तु एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए कि वहाँ वेश्याओ का खण्डन न कीजिएगा।' स्वामी जी ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया "भला पाप-वृक्षो को मै नख-शाखो से काटूँगा? कैंची से कलम करूँगा जिससे और बढे? मै उन्हे पैनी तलवार से समूल नष्ट कर दूँगा।"

स्वामी जी जोधपुर गए। जोधपुर जाना ही उनकी मृत्यु का कारण हुआ। पर वे अपने व्रत से न टले।

स्वामी जी का शरीर जैसा विशाल और डील डौल वाला था वैसा ही बल भी था। किसी को उनकी ओर एक टक देखने का भी साहस न पडता था। एक बार दो पठानो ने मारने के लिए उनका पीछा किया। स्वामी जी ने जान लिया।

वे बिना पीछे देखे चुपचाप आगे बढते गए। पठान भी पीछा किए थे—सोच रहे थे कि एकान्त पाते ही दौड कर हमला कर देंगे। चलते चलते एक नदी पडी। स्वामी जी बीच नदी मे जाकर नहाने के बहाने शरीर मलने लगे। पठानो ने समझा यह अच्छा मौका है, पास आए ही थे कि स्वामी जी ने पीछे घूम लपककर दोनो को पकड लिया और इधर उधर बगल मे दबाकर बोले—"बोलो, कहो तो जोर से दबा कर अभी तुम लोगो के प्राण पखेरू उडा दूँ ?" अब तो वे गिडगडाने लगे—"हम तोबा करते है, खुदा के लिए जान बख्शो आगे कभी ऐसा गुनाह न करेंगे" यह कह कर उन्होंने अपनी २ कटारे जल मे फेंक दी। स्वामी जी ने "खबरदार! याद रक्खो कभी किसी के मारने का विचार करना बडा पाप है" कहते हुए उन्हे छोड दिया और चल दिए।

एकबार एक राजा साहब दो घोडो की गाडी मे बैठ कर स्वामी जी से मिलने आए। बातचीत होते होते राजा साहबबोले "आपका शरीर देखने मे जैसा मोटा ताजा, हट्टा कट्टा और भव्य है, क्या इसमे बल भी वैसा ही है? आप तो ब्रह्मचारी है खूब बल होना चाहिए।" स्वामी जो ने उस समय तो उन्हे कुछ उत्तर न दिया पर जब वे बातचीत कर के चल दिए तो थोडी दूर निकल जाने पर स्वामी जी ने लपक कर पीछे से जाकर उनकी गाडी के पहिए का डडा पकड लिया। गाडी सहसा रुक गई। कोचवान ने कितने ही कोडे जमाए पर घोडे वहीं उछलते कूदते रहे। आगे एक पैर भी न बढ सके। राजा साहब को बडा आश्चर्य हुआ कि क्या बात है। पीछे फिर कर देखा तो देखते हैं कि स्वामी जी गाडी का पहिया पकडे हुए खडे हैं। फौरन गाड़ी से उतर कर राजा साहब स्वामी जी के

चरणों मे गिर पडे और बोले "अपराध क्षमा कीजिए, मैं समझ गया आप में अपरिमित बल है।"

स्वामी जी उत्तर देने मे कभी न चूकते थे। कोई बात आते ही फ़ौरन ही उसका उत्तर देते थे। एक बार एक सन्यासी जो स्वामी जी के प्रचार के कारण बहुत क्रुद्ध होकर उनसे लडने आया था, आते ही अट सट बकता हुआ बोला-"तुम सन्यासी नहीं धूर्त्त, ठग हो। भला सन्यासी को धातु छूना कहाँ लिखा है जो तुम अपने पास पैसा रखे हुए हो। थाली मे भोजन करते हो। दूसरो को धोखा देते फिरते हो, शरम नहीं आती।" स्वामी जी हँसे और बडी सरलता से मुसुकुराते हुए उत्तर दिया—"हाँ, स्वामिन, आप ठीक कहते हैं मैं तो धातु छूता हुआ जब कब पैसा भी ज़रूर रख लेता हूँ, थाली मे भोजन भी कर लेता हूँ, आप सच्चे सन्यासी है, आप तो धातु स्पर्श करते न होंगे। आप के ये बाल भी निश्चय ही उस्तरे से न बने होंगे क्योंकि वह धातु है। कहिए महाराज स्वामी जी, किस चीज से ये बाल बनाए गए है"? अब तो उस सन्यासी के मुख से बात न निकली, लज्जित होकर सिर नीचा किए हुए चुपचाप वहाँ से खिसक गया।

ऐसे ही एक बार कुछ चालाक धूर्त्तों ने आपस में सलाह की कि चलो स्वामी जी को चल कर शर्मिन्दा करे। उनसे चल कर पूछे कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी। यदि उन्होंने कहा हम ज्ञानी है तो हम लोग कहेगे आप बडे अभिमानी हैं। यदि उन्होने कहा—हम अज्ञानी हैं तो हम लोग कहेगे कि यदि आप अज्ञानी हैं ता बडी बडी बातें क्यो बनाते हैं, अज्ञानी को उपदेश करने का कब अधिकार है? इस प्रकार निश्चय कर वे लोग स्वामी जी के पास पहुँचे। आवभगत करके उनके पास बैठ गए फिर वही प्रश्न पूछा। स्वामी जी ताड गए, फौरन बोले—"देखो

मै जीवात्मा होने से बहुत से विषयो में तो अज्ञानी हूँ पर बहुत सी बाते शास्त्रो द्वारा जानता हूँ—इस दृष्टि से ज्ञानी हूँ" व लोग उत्तर पाकर लज्जित हो गए और चुपचाप चले गए।

श्री गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० बडे विद्वान्, प्रसिद्ध फिलासफर और एक कट्टर नास्तिक थे। स्वामी जी से उन्हें इतनी घृणा था कि वे उनका मुख देखना तक पाप समझते थे। जब स्वामी जी मृतप्राय थे तो गुरुदत्त को मालूम हुआ। उन्होंने सोचा—"चल कर देखना चाहिए कि पापी कितने कष्ट से मरता है। आज उसका छटपटाना ता देख लूँ।" बडी प्रसन्नता से गुरुदत्त स्वामी जी के स्थान पर पहुँचे। मरणासन्न ऋषि प्रसन्नमुख इधर उधर खडे लोगो को उपदेश दे रहे थे। सारे शरीर मे फफोले थे पर आस पास भी कही 'आह' का शब्द न था। मालूम होता था कोई स्वस्थ्य पुरुष हँस २ कर उपदेश कर रहा है। "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, ॐ" कहते हुए स्वामी जी ने अन्तिम निश्वास छोड दी। चारो ओर से आँसुओ की सरिता बह चली। केवल एक व्यक्ति था जो दूर कोने मे खडा एकटक ऋषि-मुख की ओर देख रहा था। आँसू का नाम न था पर मुख पर एक नए प्रकार की गभीरता थी। वह कह रहा था "मैं पुस्तको पर नहीं, अपने जीवन के पृष्ठो पर ऋषि दयानन्द के चरित को लिख रहा हू।" अब वह नास्तिक गुरुदत्त आस्तिक गुरुदत्त हो गए थे।

अभी तीन वर्ष हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती की शताब्दी जयन्ती मथुरा मे बडी धूम धाम से मनाई गई थी। ऐसा उत्सव १००-५० वर्ष के भीतर शायद ही कही मनाया गया हो। चार लाख मनुष्यो की अपार भीड थी। जापान, अमेरिका, अफ्रीका, इङ्गलैण्ड तक से प्रतिनिधि आए थे। सभी सम्प्रदायियो के निबन्ध व्याख्यान आदि हुए थे। परस्पर मिलन, सभाषण, कार्य-

चरणो में गिर पडे और बोले "अपराध क्षमा कीजिए, मै समझ गया आप में अपरिमित बल है।"

स्वामी जी उत्तर देने मे कभी न चूकते थे। कोई बात आते ही फौरन ही उसका उत्तर देते थे। एक बार एक सन्यासी जो स्वामी जी के प्रचार के कारण बहुत क्रुद्ध होकर उनसे लडने आया था, आते ही अट सट बकता हुआ बोला—"तुम सन्यासी नही धूर्त्त, ठग हो। भला सन्यासी को धातु छूना कहाँ लिखा है जो तुम अपने पास पैसा रखे हुए हो। थाली मे भोजन करते हो। दूसरों को धोखा देते फिरते हो, शरम नहीं आती।" स्वामी जी हँसे और बडी सरलता से मुसुकुराते हुए उत्तर दिया—"हाँ, स्वामिन, आप ठीक कहते हैं मैं तो धातु छूता हुआ जब कब पैसा भी जरूर रख लेता हूँ, थाली मे भोजन भी कर लेता हूँ, आप सच्चे सन्यासी है, आप तो धातु स्पर्श करते न होंगे। आप के ये बाल भी निश्चय ही उस्तरे से न बने होंगे क्योंकि वह धातु है। कहिए महाराज स्वामी जी, किस चीज से ये बाल बनाए गए हैं"? अब तो उस सन्यासी के मुख से बात न निकली, लज्जित होकर सिर नीचा किए हुए चुपचाप वहाँ से खिसक गया।

ऐसे ही एक बार कुछ चालाक धूर्त्तों ने आपस में सलाह की कि चलो स्वामी जी को चल कर शर्मिन्दा करे। उनसे चल कर पूछे कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी। यदि उन्होने कहा हम ज्ञानी है तो हम लोग कहेंगे आप बडे अभिमानी हैं। यदि उन्होने कहा—हम अज्ञानी हैं तो हम लोग कहेगे कि यदि आप अज्ञानी हैं ता बडो बडी बातें क्यो बनाते हैं, अज्ञानी को उपदेश करने का कब अधिकार है? इस प्रकार निश्चय कर वे लोग स्वामी जी के पास पहुँचे। आवभगत करके उनके पास बैठ गए फिर वही प्रश्न पूछा। स्वामी जी ताड गए, फौरन बोले—"देखो

मै जीवात्मा होने से बहुत से विषयो में तो अज्ञानी हूँ पर बहुत सी बाते शास्त्रो द्वारा जानता हूँ—इस दृष्टि से ज्ञानी हूँ" व लाग उत्तर पाकर लज्जित हो गए और चुपचाप चले गए।

श्री गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० बडे विद्वान्, प्रसिद्ध फिलासफर और एक कट्टर नास्तिक थे। स्वामी जी से उन्हें इतनी घृणा थी कि वे उनका मुख देखना तक पाप समझते थे। जब स्वामी जी मृतप्राय थे तो गुरुदत्त को मालूम हुआ। उन्होंने सोचा—"चल कर देखना चाहिए कि पापी कितने कष्ट से मरता है। आज उसका छटपटाना ता देख लूँ।" बडी प्रसन्नता से गुरुदत्त स्वामी जी के स्थान पर पहुँचे। मरणासन्न ऋषि प्रसन्नमुख इधर उधर खडे लोगों को उपदेश दे रहे थे। सारे शरीर में फफोले थे पर आस पास भी कही 'आह' का शब्द न था। मालूम होता था कोई स्वथ्य पुरुष हँस २ कर उपदेश कर रहा है। "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, ॐ" कहते हुए स्वामी जी ने अन्तिम निश्वास छोड दी। चारो ओर से आँसुओ की सरिता बह चली। केवल एक व्यक्ति था जो दूर कोने मे खडा एकटक ऋषि-मुख की ओर देख रहा था। आँसू का नाम न था पर मुख पर एक नए प्रकार की गभीरता थी। वह कह रहा था "मैं पुस्तको पर नही अपने जीवन के पृष्ठो पर ऋषि दयानन्द के चरित को लिख रहा हू।" अब वह नास्तिक गुरुदत्त आस्तिक गुरुदत्त हो गए थे।

अभी तीन वर्ष हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती की शताब्दी जयन्ती मथुरा मे बडी धूम धाम से मनाई गई थी। ऐसा उत्सव १००-५० वर्ष के भीतर शायद ही कही मनाया गया हो। चार लाख मनुष्यो की अपार भीड़ थी। जापान, अमेरिका, अफ्रीका, इङ्गलैण्ड तक से प्रतिनिधि आए थे। सभी सम्प्रदायियो के निबन्ध व्याख्यान आदि हुए थे। परस्पर मिलन, सभाषण, कार्य-

विधि, प्रबन्ध आदि के दृश्य देखने लायक थे। बिलकुल सतयुग का नज़ारा मालूम होता था। एक अपूर्व दृश्य था। शताब्दी के सभापति स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कहा था—"या तो मैं इतिहास में अशोक के समय ऐसे उत्सवों का होना पढ़ा करता हूँ या यह शताब्दी उत्सव देखा है।" शताब्दी उत्सव के सफलता पूर्वक सम्पन्न होने का एक मात्र कारण था आर्य समाज के स्तम्भ, सच्चे सन्यासी श्री नारायण स्वामी जी का अपूर्व साहस, अद्भुत कार्य-क्षमता और तत्परता तथा देशानुराग।

— —

३—परमहस स्वामी श्री रामकृष्ण



ध्यात्मिक जीवन ही श्रेष्ठ और वास्तविक जीवन है यह सिद्ध कर दिखाने वाले महापुरुषो के जन्म देने का सौभाग्य भारतवर्ष को ही प्राप्त है। भारतीय महापुरुषो ने ही ससार को शान्ति का पाठ पढाया है। ऐसे ही महापुरुषो मे परमहस स्वामी रामकृष्ण भी थे।

परमहस रामकृष्ण जी का जन्म सन् १८३३ ई० म हुगली के समीपवर्त्ती कामारपूकर नामक गॉव मे एक ब्राह्मण कुल मे हुआ था। उनके पिता का नाम था श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय। खुदीराम जी के तीन पुत्र थे जिनमे हमारे चरित-नायक सब से छोटे थे। ईश्वरीय अवतारो के सदृश उनके जन्म-विषय मे भी अनेक किम्बदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

स्वामी जी बाल्यकाल से ही अत्यन्त नम्र स्वभाव क थे। वाणी बहुत ही मधुर और मनोहारिणी थी। इसी से अडोस पडोस और गाँव के लोग उन से बहुत प्रसन्न रहा करते थे और प्राय अपने घरो मे ले जाकर उन्हे भोजन कराया करते थे। उनका ध्यान कृष्ण चरित्र सुनने और उनकी लीला करने मे बहुत लगता था। देव-पूजा मे तो ऐसी श्रद्धा थी कि स्वत पार्थिव पूजन किया करते थे और कभी कभी भक्ति-भाव में तन्मय होकर अचेत हो जाते थे। समीपवर्त्ती अतिथि-शाला मे जाकर प्राय अभ्यागतो की सेवा, परिचर्या किया करते थे।

सोलह वर्ष की अवस्था मे स्वामी जी का यज्ञोपवीत हुआ और

व तभी पढने के लिए पाठशाला मे भेजे गए। चित्त पढने म बिल-कुल न लगता था। सस्कृत पाठशाला मे पडितो के व्यर्थ के नित्य-प्रति के वादविवाद सुनकर घबडा गए और दु खी होकर एक दिन बडे भाई से स्पष्ट बोले—

'भाई, पढने लिखने से क्या होगा ? इस पढने लिखने का उद्देश्य तो केवल धन धान्य पैदा करना ह । मै तो वह विद्या पढना चाहता हू जो मुझे परमात्मा की शरण मे पहुचादे ।' ऐसा कह कर उस दिन से पढना छोड दिया। यदि आपकी हस्तलिखित रामायण न मिलती तब तो लोगो को यही निश्चय न होता कि स्वामी जी बिलकुल ही पढे लिखे थे या नही।

स्वामी जी का चित्त पूजा मे लगता ही था—काली देवी के मन्दिर के पुजारी बना दिए गए। वहाँ अनन्य भक्ति के साथ काली जी की पूजा करने लगे, परन्तु यह प्रश्न हृदय मे सदैव हिलोरे लेता रहता था कि " क्या वस्तुत मूर्त्ति मे कोई तत्त्व है ? क्या सचमुच यही जगज्जननी आनन्दमयी माँ हैं या यह सब केवल स्वप्नमात्र है ? ' इत्यादि। इस प्रश्न से उन्हे यथाविधि काली पूजा करना कठिन हो गया। कभी भोग ही लगाते रह जाते कभी घटो आरती ही करते रहते, कभी सब कार्य छोड कर रोया ही करते और कहा करते, "मा, ओ माँ, मुझे अब दर्शन दो। दया करो, देखो जीवन का एक दिन और वृथा चला गया। क्या दर्शन नही दोगी ? नही, नही, दो जल्दी दर्शन।" अन्त मे हालत इतनी बिगडती गयी कि उन्हे पूजा त्यागनी ही पडी।

परमहस जी अपनी धुन मे मस्त हो गए, दिन रात उन्हे काली दर्शन का ही ध्यान रहने लगा। उन्होने १२ वर्ष की कठिन तपस्या की, जिसमे खानापीना, सोना छोड कर एक टक एक ही ध्यान मे रहे। इस समय स्वामी जी का भतीजा कभी २ जबरन उन्हे २-४

ग्रास भोजन करा जाता था। १२ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् इन्हों ने अपूर्व शान्ति लाभ की।

काञ्चन भाव दूर करने के लिए स्वामी जी एक हाथ मे रुपया और अशर्फी तथा दूसरे मे मिट्टी लेकर कहते थे—" ऐ मन, जिस पर विक्टोरिया की छाप लगी है यह वह वस्तु है।जससे मनुष्य भाँति २ के पदार्थ भोगता है, ऐश करता है। इस मे बडे आलीशान मकान बनाने का शक्ति है परन्तु ज्ञान, सच्चा आनन्द या ब्रह्म को प्राप्त करने मे यह कदापि सहायता नही दे सकती।" फिर दूसरे हाथ की ओर देख कर कहते—"देख, यह मिट्टी है। यह वह वस्तु है जिस से खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिसके द्वारा बडे बडे मकान बनते है, बडी २ मूर्तिया बनती है। ऐ मन, ये दोनो ही जड पदार्थ है, समान है । तू इन्हे लेकर क्या करेगा ? तू तो सच्चिदानन्द मे लीन होने की चेष्टा कर"। ऐसा कहते हुए रुपया, अशर्फी और मिट्टी तीनो को एक मे मिलाकर गङ्गा जी मे फेक देते थे ।

एक और पहुचे हुए साधु थे जिनका नाम था तोताराम । राम कृष्ण जी इन्हे अपना गुरु परन्तु तोता राम जी इन्हे अपना सखा मानते थे। एक दिन दोनो मे बैठे हुए कुछ बात चीत हो रही थी कि किसी व्यक्ति ने आकर तोताराम जी की धूनी से आग उठा कर चिलम मे भरली। तोताराम जी बडे क्रुद्ध होगए और उसे बहुत कुछ बके झके कि तूने मेरी अग्नि अपवित्र कर डाली। यह सुन कर परमहंस जी से न रहा गया। उन्होने नम्रता पूर्वक कहा—"महाराज, क्या इसी प्रकार आप सब वस्तुओ को ब्रह्म मानते है ? क्या यह आदमी और अग्नि ब्रह्म से भिन्न वस्तु हैं ? ज्ञानियो को तो ऊँच नीच समान है।" तोताराम जी शान्त होकर बोले—" भाई तुम ठीक कहते हो। आज से मुझे क्रुद्ध न देखोगे।" इसके बाद उन को कभी क्रोध करते नहीं देखा गया।

शास्त्र मे बतलाया है कि भगवान की भक्ति के नौ प्रकार है— श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य-भाव, सख्य-भाव और आत्म-निवेदन। स्वामी जी ने पृथक् २ प्रत्येक प्रकार की साधना करके पूर्ण भक्ति प्राप्त की।

यही नही, स्वामी जी ने सिक्ख धर्म स्वीकार करके उसमे पूर्ण भक्ति प्राप्त का। तीन चार दिन एक मुसलमान के साथ रह कर मुहम्मदीय धर्म का भी निचोड देखा। ईसा के चित्र को ही देख कर कुछ समय के लिए आत्म-विस्मृत हो गए, कई दिन तक उन्ही का ध्यान करते रहे।

इस प्रकार सब धर्मा व सम्प्रदायो का मथन करके स्वामी जी ने निश्चित समझ लिया कि ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी विशेष धर्म की आवश्यकता नही, वह तो किसी भी धर्म मे प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसा निश्चय करके वे तीर्थयात्रा को निकले और एक वार भारत मे सर्वत्र घूम कर दक्षिणेश्वर मे आकर ठहरे। यही रह कर लोगो को धर्मोपदेश करने लगे। लोग बडी २ दूर से धर्मोपदेश सुनने के लिए आया करते थे जिनमे बडे २ विद्वान, धर्मनिष्ठ, धनवान आदि सभी श्रेणी के पुरुष होते थे। दिन रात दर्शनार्थ आए हुए लोगो की अच्छी खासी भीड लगी रहा करती थी।

स्वामी जी ज्ञान, योग, वेदान्त अथवा अद्वैत मीमासा का निरूपण किया करते थे। उनका कहना था "ब्रह्म, कालदेश निमित्त आदि से कभी मर्यादित नही हुआ, न हो सकता है फिर भला मुख के शब्द द्वारा ही उसका यथार्थ वर्णन कैसे हो सकता है। ब्रह्म तो एक अगाध समुद्र के समान है, वह निरुपाधित, विकार-हीन और मर्यादातीत है। तुम से यदि कोई कहे कि महासागर का यथार्थ

वर्णन करो तो तुम बडी गडबडी मे पड कर यही कहोगे—अरे, इस विस्तार का कही अन्त है। असख्य लहरें उठ रही है कैसा गर्जन हो रहा है इत्यादि। इसी तरह ब्रह्म को समझो।"

"यदि आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो पहले अहम्भाव को दूर करो क्यो कि जब तक अहकार दूर न होगा अज्ञान का परदा कदापि न हटेगा। तपस्या, सत्सङ्ग, स्वाध्याय आदि साधनो से अहङ्कार दूर कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करो, ब्रह्म का पहचानो।"

जिस प्रकार पुष्प की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर समूह उस पुष्प को आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार परमहस स्वामी रामकृष्ण जी के आत्म-ज्ञान-रूपी अबाधित प्रकाश से आकृष्ट भक्त रूपी पतङ्ग स्वामी जी को सदैव घेरे रहते थे। वे सदैव सब को धर्मोपदेश रूपी वचनामृत से तृप्त करते रहते थे। स्वत तो हर समय ब्रह्मलीन रहते ही थे।

एक दिन स्वामी जी के गले मे कुछ पीडा होने लगी, शनै २ उसने गडमाला का रूप धारण कर लिया। डाक्टर वैद्यो ने औषधोपचार मे कोई कमी न उठा रक्खी पर स्वामी जी तो समझ चुके थे कि अब मुझे इस ससार से जाना है। तीन मास बीमार रहे पर बराबर उत्साह पूर्वक, पूर्ववत्, धर्मोपदेश करते रहे। एक दिन अपने एक भक्त से पूछा—"आज श्रावणी पूर्णिमा है? तिथि-पत्र मे देखो।" भक्त ने देख कर कहा—"हा"। बस, स्वामी जी समाधि मग्न होगए और प्रतिपदा को प्रात काल इह लीला समाप्त कर दी। घर घर यह दुखद समाचार फैल गया। बात की बात मे सहस्रो नर नारी एकत्रित हो गए। पञ्चतत्त्वमय शरीर पञ्चतत्त्व मे मिला दिया गया।

स्वामी जी सदैव शान्त और प्रसन्न मुख रहा करते थे। उन्हे

उदास या क्रोध करते हुए तो कभी भी देखा ही नही गया। उनमे अद्भुत आकर्षण-शक्ति थी। मनुष्य उनके उपदेश से एकदम प्रभावान्वित हो जाता था। दूसरो की शकाएँ वे छूमन्तर की तरह बात की बात मे नष्ट कर देते थे। प्रत्येक बात के समझाने मे वे अनेक उदाहरण देते थे जिससे मनुष्य के हृदय पर उनकी बात पूरी तरह जम जाती थी।

उनके जीवन की अनेक घटनाए हैं।

जगत प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द परमहस जी के ही प्रधान शिष्य थे। प्रसिद्ध श्री केशवचन्द्र सेन के जीवन के महान परिवर्त्तन के कारण परमहस जी ही थे।

एक बार श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर परमहस जी के दर्शनो की इच्छा से उनके पास गए। परमहस जी कुछ देर टकटकी लगाए उनकी ओर देखते रहे फिर बोले—

"आज तक मैंने बहुत से बम्बे, नाले, नहरे, नदी, नद देखे थे पर सौभाग्य से आज सागर का दर्शन हो ही गया"।

विद्यासागर—पहले आप मीठे पानी के पास थे, अब आप को खारा पानी मिलेगा।

परमहस—नही, आप खारे समुद्र नही आप तो क्षीर सागर है। अविद्या नहीं, विद्यासागर है।

विद्यासागर—(ˉकोच से हँसते हुए) आप जो चाहे कहे।

परमहस—आप का स्वभाव सतोगुणी है जो सत्य ज्ञान की ओर लेजानेवाला है। हाँ, वह आपको स्वस्थ नही बैठने देता सदा उद्योग मे रखता है। पर आप सिद्ध पुरुष है, आप का अन्त करण बिलकुल मृदु और कोमल हो गया है जैसे आलू आदि शाक सिद्ध (तैयार) होनेपर हो

जाते है। जो आचरण निष्काम बुद्धि से होता है उसके लिए क्या कहना।

विद्यासागर—परन्तु कुचैली दाल सिद्ध होने पर घोटने से कठिन हो जाती है, मृदु नही रहती। क्या यह सच है?

परमहस—परन्तु आप वैसे पण्डित नही है, आप का वह हाल नही है। पञ्चाङ्ग मे लिखा रहता है कि अमुक २ दिन इतनी इतनी जल वृष्टि होगी लेकिन पञ्चाङ्ग निचोडने से एक बूँद भी जल नही निकलता। इसी तरह हम लोगो मे पण्डित कहलाने वाले बहुत है जो बढ २ कर बाते तो मारा करते हैं, पाण्डित्य तो बघारते हैं पर अनुभव के साथ बोलने वाले बहुत कम है। आप अनुभव के साथ बोलते हैं।

इसी प्रकार बहुत देर बातचीत करने के अनन्तर प्रसन्न होते हुए विद्यासागर जी घर चले गए।

परमहस जी के विवाह के समय उनकी स्त्री को अवस्था केवल ५ वर्ष की थी। ग्यारह वर्ष बाद स्वामी जी की इच्छा हुई कि ससुराल चलना चाहिए। बस, वे ससुराल जा पहुँचे और बिना पूछेताछे घर मे घुसते चले गए, आगन मे जा खडे हुए। उन की स्त्री जो इस समय १६ वर्ष की थी किसी कार्य मे लगी थी। एक अपरिचित मनुष्य को पागल की तरह सामने खडा देख चिल्ला उठी—'माँ! देख, कोई पागल घर मे घुस आया है।" माँ ने निकल कर देखा। कुछ देर तो पहचान न सकी फिर "यह तो मेरा दामाद है, हाय क्या मेरे भाग्य मे यही बदा था?" कहते हुए पृथ्वी पर गिर पडी। सचेत होने पर देखा कि रामकृष्ण पूजा की सब सामग्री जुटा कर स्त्री से कह रहे है—'आ, इस चौकी पर बैठ'।

सहज स्वभाव बाला आकर चौकी पर बैठ गई। परमहस " माँ, माँ " कह कर उस के चरणो पर पुष्पाञ्जली चढाने लगे और आरती करने लगे। उनको सास यह दृश्य देख कर उन्हे कटु वाक्य कहने लगी। पर वे पूजा समाप्त कर वहाँ से चले गए।

रामकृष्ण के चले जाने के दो वर्ष बाद उनकी स्त्री ने जो अब तक जानती थी कि मेरा पति पागल है अब जाना कि वह तो एक असाधारण ज्ञानी पुरुष है। निदान एक दिन वह अपनी माता को साथ ले उनके दर्शनो को चल पडी और ३०-४० मील पैदल यात्रा कर दक्षिणेश्वर पहुँची।

परमहस जी ने उस का बडा आदर करते हुए कहा—"तुम्हारा पति रामकृष्ण तो मर गया, यह नवीन रामकृष्ण है जो ससार की तमाम स्त्रियो को माँ समझ रहा है" यह कह कर वे उसके पैरो मे गिर पडे। स्त्री भी स्वामी के मन का भाव समझ गई, बोली—' मेरी भी यही इच्छा है कि मै अपने को आपके अनुरूप बनाने का प्रयत्न करूँ। मै केवल यही चाहती हू कि आप की सेवा और ईश्वर भजन मे अपना काल यापन करूँ।" वह वही मन्दिर मे रहने लगी। एक दिन परमहस जी के एक भक्त ने उसे दश हजार रुपया देना चाहा पर साध्वी स्त्री ने कहा—" मै इसे क्या करूँगी, मैं तो यथासम्भव अपने पति का अनुकरण करना चाहती हूँ "।

स्वामी रामकृष्ण परमहस जी के जीवन की ऐसी ही कितनी ही घटनाएँ है जिन से समझ मे आ जाता है कि वे ईश्वर के कैसे अनन्य भक्त, धर्मोपदेष्टा और पहुँचे हुए सिद्ध पुरुष थे।

४--श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर



रत वर्ष के वीरो की कथा ने पृथ्वी पर जिस अविनाशी कीर्ति-मन्दिर की स्थापना की है, मनुष्य समाज मे जो आदर्श ससार के सामने स्थापित किये हैं उनमे एक अमर-पुरुष दयासागर श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का चरित्र भी है।

ईश्वरचन्द्र जी के जन्म के विषय में अनेक कथाए प्रचलित हैं पर हम केवल यही बतलाना चाहते है कि उनका जन्म सन् १८२० ई० मे बङ्गाल के मेदिनी जिले के समीप वीरसिंह नामक गाँव मे हुआ था। उनके पिता ठाकुरदास बन्द्योपाध्याय एक गरीब ब्राह्मण किन्तु निष्ठावान और कर्त्तव्य-निरत व्यक्ति थे।

पाँच वर्ष की अवस्था मे बालक ईश्वरचन्द्र ग्राम-पाठशाला में पढने बैठाये गये। अभी छै महीने ही पढे होंगे कि बीमार हो गये। बचने तक की आशा न रही। बडी मुश्किल से बचे। फिर पढना आरम्भ किया और आठ वर्ष की उम्र मे पाठशाला की पढ़ाई समाप्त कर ली। पढने मे विद्यासागर की बुद्धि बडी तीव्र थी। जो पाठ पढाया जाता, फौरन याद कर लेते। शिक्षकवर्ग बुद्धि की विलक्षणता देख कर उनसे बडा स्नेह करते और कहते थे कि यह बालक किसी समय महा पुरुष होगा। विद्यासागर पढने में जैसे तीव्र थे वैसे ही खिलाडी और उपद्रवी भी थे। शैतानी कूट २ कर भरी थी। दूसरो के घरो के सामने पेशाब कर आना, टट्टी फिर आना उनके लिए साधारण बात थी। जब घर की लडकिया, बहुएँ मारने के लिये पकडने दौडती तो वे भाग खडे होते। घर

की बडी बूढी औरतें जिन्होंने ज्योतिषियो के मुख से विद्यासागर के विषय मे सुन रक्खा था—कहती " अरे जाने दो इससे कुछ न कहो यह भविष्य का महा पुरुष है। "

किसी के धुले हुए कपडे सूखते देखते तो विद्यासागर उन्हें अशुद्ध कर आते थे। रास्ते मे चलते हुए खेता मे से बालें तोड कर कुछ खाना, कुछ इधर उधर फेंक देना उनका एक प्यारा खेल था। एकबार एक बाली गले मे अटक गई जिससे मरते २ बचे। इसी प्रकार उन्होने अपने उपद्रवी जीवन मे अनेक कष्ट उठाये।

दस वष की अवस्था मे विद्यासागर कलकत्ते पढने भेजे गये। वहाँ सस्कृत कालेज मे भरती हुए। इस समय उनकी बुद्धि की असाधारण प्रतिभा देखी गई। इङ्गलिश का उस समय प्रचार कम था। उन्हाने सस्कृत पढना प्रारम्भ किया। अध्यापक उन्हे देखकर आश्चय करते थे आर कहते थ " इस बालक को पढाने मे हमे बडा ध्यान रखना पडता है, जब हम पढाते हैं तो इसके प्रश्नो म ऐसा मालूम हाता है कि यह बहुत पहल से ही पढा हुआ है। " बीस वर्ष की उम्र मे विद्यासागर अलङ्कार, काव्य, ज्योतिष, दर्शन, व्याकरण, वेदान्त, न्याय, धर्मशास्त्र आदि मे पूर्ण पण्डित होगये। सभी विषयो की परीक्षाएँ उच्च श्रेणी मे बडी प्रतिष्ठा के साथ पास की। इक्कीस वर्ष की उम्र मे उन पडितो ने जो अपने विषयो के उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् थे—ईश्वर चन्द्र को 'विद्यासागर' की उपाधि से विभूषित करतेहुए उन्हें प्रमाण पत्र दिया।

बालक-जीवन के प्रिय और शैशव काल के उच्चतम उज्ज्वल दृष्टान्त को पीछे छोड कर विद्यासागर जिम्मेदारी-पूर्ण कर्मक्षेत्र के द्वार पर आ डटे। कलकत्ता फोर्ट विलियम कालेज में ५०) मासिक की सस्कृत पण्डित का जगह खाली हुई। दूसरो के अनेक

ायत्न करनेपर भी विद्यासागर को ही उक्त पद दिया गया जिसपर
। बडी योग्यता के साथ कार्य करने लगे। उनके कार्य से अल्प
नमय मे ही सब प्रसन्न हो गये।

उन ने खुद भी पढाने के साथ ही साथ अगरेजी और हिन्दी का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया और थोडे ही समय ा ही उनमे भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वे दिन रात ारिश्रम करते थे । खाली बैठना तो जानते ही न थे। वेद्यार्थियो को पढाना दो २ बार खुद पढना, इसके बाद बँगलों प्रादि पर अङ्गरेजो को सस्कृत, हिन्दी पढाने जाना, इसके अति-रेक्त दीन दुखियो की यथाशक्ति सहायता, उनके दुख दूर करने का निरन्तर प्रयत्न ये उनके नित्य के कार्य थे। दूसरो के कार्य के लेये बीस २ तीस २ कोस पैदल धूप मे चले जाते थे।

उनका पढाना देखकर दूसरे लोग दङ्ग रह जाते थे । किसी ाकार का पक्षपात करना, या किसी से डरना तो वे जानते ही न ो। मि० माशल सस्कृत कालेज के प्रिन्सपल थे। वे विद्यासागर ने बडा स्नेह रखते थे। उन्होने ही उन्हे नौकरी दी थी। बहुत से सेविलियन सस्कृत की कठिन पढाई के कारण परीक्षा मे फेल हो ााते थे और निराश होकर दुख के साथ विलायत लौट जाना पडता ा। उनका पक्ष करते हुए एक दिन मार्शल साहब ने विद्यासागर के पास आकर नम्रता से कहा—"परीक्षा लेने मे इन लोगो की रेयायत कर दिया काजिए।" विद्यासागर ने फौरन उत्तर दिया 'मै न्याय-विरुद्ध अनुचित पक्षपात नही कर सकता, चाहे मुझे आज नौकरी से पृथक कर दीजिये।" यह थी विद्यासगर की निर्भीकता और कार्य करने की दृढता।

एक बार भारत के तत्कालोन गवर्नर कालेज देखने आये। विद्यासागर से बहुत देर तक उनकी बातचीत होती रही। विद्या-

सागर ने कहा "संस्कृत-कालेज से पढकर निकले हुए विद्यार्थियो के लिए जीविका का प्रश्न टेढा होता जा रहा है, नौकरी आदि न मिलने से संस्कृत की ओर से लोगो को रुचि हटती जा रही है, कोई ऐसा यत्न होना चाहिये जिससे यह प्रश्न हल हो।" गवर्नर पर विद्यासागर की बात का बहुत असर पडा। उसने उसी साल एक सौ एक बङ्गला स्कूल खुलवा दिये और विद्यासागर तथा मार्शल साहब को उनके कार्य सञ्चालन पर नियुक्त कर दिया।

विद्यासागर ने बडी योग्यता के साथ उन स्कूलो का कार्य चलाया। हालाँ कि उनके न्याय-प्रिय होने के कारण उनसे कुछ लोग अप्रसन्न भी हुए पर उन्होने अप्रसन्नता की जरा भी परवाह न की। इस प्रकार सैकडो पुरुषो को जीविका दिलाई। कई बार अधिक वेतन की अच्छी २ जगहे खाली हुई और उनसे उन जगहो के लिए अनुरोध किया गया पर वे न गए, दूसरो को वहाँ करवा दिया। इस तरह अपने निर्लोभ होने का परिचय दिया।

धीरे २ विद्यासागर स्कूलो के इन्स्पेक्टर हो गये। उन्होने कितनी ही शिक्षा-संस्थाओ को जन्म दिया, कितने ही स्कूलो के प्रबन्धक, परीक्षा-मन्त्री, सदस्य, सञ्चालक आदि रह कर बड़ी योग्यता से उनका कार्य किया। कितने ही विद्यार्थियो को छात्र-वृत्ति, कितने ही अध्यापको को अध्यापकी, कितने ही अन्य मनुष्यो को उनके योग्य कार्य दिलाए। ५०) रु० से लेकर ५००) रु० मासिक के पद तक विद्यासागर जा पहुचे जिसमे अपनी कार्य-क्षमता और प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया।

किन्ही कारणो से शिक्षा–विभाग के डाइरेक्टर से कुछ मतभेद हो जाने के कारण विद्यासागर ने शिक्षा-विभाग से इस्तीफा दे दिया। डाइरेक्टर ने बहुत चाहा कि वे अपना इस्तोफा वापिस लेले पर स्वाभिमानी विद्यासागर को यह कब प्रिय था उन्होने न माना।

५००) रु० की नौकरी पर लात मार, गुलामी की जजीर तोड़कर निकल खडे हुए। नौकरी छोडने के कारण उनको आर्थिक कष्ट अवश्य उठाना पडा पर वे जरा भी विचलित न हुए। सस्कृत और बँगला साहित्य मे बालोपयोगी, नवयुवकोपयोगी पचासो पुस्तकें लिख डाली। समाज-सुधार सम्बन्धी कई समाचार-पत्र निकाले जिनकी बहुत अच्छी माग हुई।

चूकि विधवा-विवाह के वे पूर्ण पक्षपाती थे इसलिए विधवा-विवाह पर भी कई पुस्तके लिखी पर प्रकाशित तभी करवाई जब माता पिता ने प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दी। बगला-साहित्य विद्यासागर का चिर ऋणी है और रहेगा। पुस्तक लिखने से उन्हे जो द्रव्य प्राप्त हुआ उसे भी उन्होने परोपकार मे ही खर्च किया। परोपकार के लिए कितने हा बार वे दूसरो के ऋणी हो गए पर अपनी यह भली आदत न छोडी। स्त्री-शिक्षा के वे कट्टर पक्षपाती थे। उसके लिए भी बहुत प्रयत्न किया, कई पुस्तकें लिखी। समाचार-पत्रो द्वारा खूब आन्दोलन किया। अनेक विरोधो के होते हुए भी बड़ी तत्परता के साथ विधवा-विवाह का कानून व्यवस्थापिका सभा मे पास करवाया। उन्होने समाज सुधार सम्बन्धी अनेक कार्य किए, मादक द्रव्य-निषेध का खूब आन्दोलन किया। बाल-बिवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह का जोरो के साथ खण्डन किया।

आज भी बङ्गाल मे जो कितनी ही ब्राह्मणेतर जातियाँ हिन्दू-धर्म, हिन्दू-शास्त्र, और समाजतत्त्व की आलोचना कर के अपनी आत्मा तृप्त करती है उसका श्रेय विद्यासागर को ही प्राप्त है। वे कहते थे सब को समान रूप से पढने का अधिकार है।

विद्यासागर की लोक-सेवाएँ अपूर्व थी। जन्म से मरते समय तक उन्होने सैकडो रोगियो के सिरहाने बैठ कर सैकड़ो राते बिता

दी। गरीबो के दुःख मिटाने के लिए हजारो रुपया खर्च कर दिया। उनके लिए बडे २ कष्ट सहे। उसी मे अपना जीवन सफल समझा। वे अपने धर्म-मत या धर्म-विश्वास को सदा गुप्त रखते थे, किसी पर प्रगट न करते थे। उनके अन्त समय तक कोई भी यह न जान सका कि वे ब्रह्मो-समाजी है या सनातन-धर्मी। हाँ, यह सब जानते थे कि वे सच्चे हिन्दू और हिन्दू-जाति के हितैषी थे। इस प्रकार अपना प्रभाव-प्रकाश ससार मे छोड कर इकहत्तर वर्ष की आयु मे महापुरुष श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर स्वर्ग धाम को अग्रसर हुए।

विद्यासागर ने मृत्यु से पूर्व जो वसीयतनामा लिखा है उसमें दो मदे थी, १—अपनी सम्पत्ति की आमदनी से ५६१) रु० मासिक खर्च। जिसमे ४५ वृत्तियाँ १०५) रु० की, आवश्यकानुसार ६ वृत्तियाँ और, जो दूसरो को सहायतार्थ थी। २,२८०) रु० मासिक का खर्च जिसमे १०० रु० गाँव के स्कूल के लिए, ५०) रु० औषधालय के लिए, ३०) रु० अनाथ और निरुपाय लोगो के लिए, और १००) विधवा विवाह के लिए थे। इससे विचार किया जा सकता है कि उस महापुरुष के जीवन की क्या सदिच्छाएँ थी और परिश्रम से अर्जित सम्पत्ति का मरते २ उसने किस प्रकार सदुपयोग किया।

विद्यासागर के जीवन की छोटी से छोटी घटनाए उनके महापुरुष होने का प्रमाण देती है। हम यहाँ पर दो चार घटनाए देते हैं।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को बुद्धि बड़ी तीव्र थी। नौ वर्ष की अवस्था मे जब वे कलकत्ते आरहे थे। रास्ते मे सडक पर थोडे २ फासले पर गडे हुए शिलाखण्ड गडे देख कर पिताजी से बोले, "पिता जी, ये पत्थर क्यो जगह २ गडे हैं?" पिता ने हँसकर

कहा, "ये व्यर्थ के पत्थर नहीं, माइल स्टोन हैं।" बालक ईश्वरचन्द्र ने पूछा,—"माइल स्टोन किसे कहते हैं।" पिता ने कहा—"यह अङ्गरेजी शब्द है।" आधे कोस का एक मील होता है। स्टोन कहते है पत्थर को। एक २ मील पर एक २ पत्थर गडा हुआ है। कलकत्ते से एक मील के फासले पर जो पत्थर गडा हुआ है उसमे अँगरेजी का एक खुदा है। यहाँ जो पत्थर गडा है उसमें उन्नीस खुदा हुआ है। इसका मतलब हुआ कलकत्ता यहाँ से उन्नीस मील अर्थात् साढे नौ कोस है। विद्यासागर ने एक और नौ को खूब ध्यान से पहचाना और प्रति मील पर एक एक अङ्क पहचानते गए। इस प्रकार कलकत्त पहुँचते २ अगरेजी की गिनती पहचानना सीख गए। एक दूकान पर थानो के नम्बर मिलाए जा रहे थे। विद्यासागर ने देख कर कहा—"ये नम्बर तो मैं भी मिला सकता हूँ, और नम्बर मिलाने लगे।" पिता ने आश्चर्य के साथ पूछा—"ये नम्बर तूने कहाँ सीखे?" ईश्वरचन्द्र ने कहा "आज ही रास्ते के मीलो से।" यह सुन कर सब को बडा आश्चर्य हुआ और सबने ईश्वरचन्द्र की बडी प्रशसा की।

विद्यासागर किसी का दुःख न सह सकते थे। कष्ट की खबर पाते ही चल देते थे। एक दिन एक मेहतर सवेरे ही रोता हुआ आया। बोला—"मालिक, मेरे घर मे मेहतरानी को हैजा हो गया है, कुछ उपाय कीजिए।" विद्यासागर फौरन दवाओ का बक्स व एक मोढा नौकर को देकर भङ्गी के साथ उसके घर पहुँचे। दिन भर वही उसके पास बैठ कर चिकित्सा करते रहे। शाम को उस वक्त घर लौटे जब मेहतरानी की तबियत सुधर गई।

एकबार एक बडा आदमी कलकत्ते के दो बडे आदमियों से मिलने आया। एक महाशय के यहाँ वह चार दिन लगातार गया

पर वे न मिले। चौथे दिन दोपहर तक उसके दरवाजे पर बैठे उसका इंतिज़ार करते रहे मागने पर भी पीने को पानी तक न मिला। तब तो बडे क्रोध से आँखे लाल किए विद्यासागर के घर पहुँचे। विद्यासागर भोजन करके खाली धोती पहिने नङ्गे बदन बाहर खडे थे। वह महाशय जाते ही इन्हे देख कर रूखे भाव मे बोले—"विद्यासागर से मुलाकात होगी?" विद्यासागर ने कहा—"हाँ, होगी क्यो नही, बैठिए।" वह बोला—"होगी क्यो नहीं की बात नही। एक को देख लिया बस इनको भी देखलूँ और चल दूँ अपने घर को।" विद्यासागर—"आप हुक्का पीते हैं?" कह कर हुक्का पीने को दिया। हुक्का पीकर ज़रा नर्म हुआ देख कर विद्यासागर ने पूछा—"भोजन हुआ है या नही?" आगन्तुक—"भोजन की ज़रूरत नही तुम ज़रा उन्हे बुला दो। भेंट करके चल दूँगा।" इसी बीच मे विद्यासागर के इशारे से कुछ जल-पान के लिए आ गया। बहुत कहने सुनने पर जल-पान करके बोला—"एक बार उन्हे बुला दो, देख तो लूँ फिर दुबारा ऐसी भूल न करूँगा।" विद्यासागर ने नम्रतापूर्वक कहा—"कहिए, क्या आज्ञा है? विद्यासागर तो यही है।" परिचय पाते ही वह हक्का बक्का सा उनको ओर ताकने लगा और लज्जित होकर बोला—"मैं—मैं—आपको—पहचाना—नही—क्षमा—करें।"

सफर में विद्यासागर थोडा सामान होने पर खुद लेकर चलते थे, कुली आदि न करते थे। एकबार गाडी के समय वे एक मैला सा डुपट्टा काधे पर डाले प्लेटफार्म पर टहल रहे थे। गाडी आ गई। मुसाफिर उतरे। एक बाबू ने अपना छोटा सा हैंड बेग नीचे उतार कर इनकी ओर पुकारा—"कुली, ओ कुली" इधर आओ। विद्यासागर ने पास आकर कहा—"कहिए"। बाबू—"ओ, हमारा

बेग ले चलो तुम कुली है ?" विद्यासागर ने बिना कुछ कहे बेग उठा लिया और चल दिए। स्टेशन के बाहर आने पर बाबू—(छड़ी हिलाते हुए) "टुम मि० विद्यासागर का घर जानता है ? वह कितनी दूर है, हमको वहाँ पहुँचा देगा ?" विद्यासागर—"हाँ, जानता हूँ, चलिए पहुँचा दूँ" कह कर चल दिए। रास्ते मे विद्यासागर ने कहा—"आप उनके यहाँ क्यो जा रहे है ?" बाबू—"हम सुनता है वो बहुत बडा आदमी है, हम उसे देखना मागता है'। घर के दरवाज़े पर पहुँच कर विद्यासागर ने बेग उतार कर रख दिया। बाबू पाकेट से चार पैसे निकाल कर उन्हे देने लगा। उन्हो ने कहा "इनकी जरूरत नही।" बाबू ने दो पैसे और निकाले "तुम बडा झगडालू आदमी हाय" कहते हुए छै पैसे देने को हाथ बढाया। विद्यासागर ने कहा—"नही, पैसे नही चाहिये।"

बाबू—'तब क्या माँगता है ?" विद्यासागर ने नम्रता-पूर्वक कहा—"आप छोटा २ काय खुद करते हुए न लजाया करे, विद्या सागर यही चाहता है।" थोडी देर तक वह स्तभित सा उनके मुख की ओर देखता रहा फिर कुछ समझ कर पैरो पर गिर पड़ा।

एकबार विद्यासागर ने छै लिहाफ बनवाकर घर भेजे। माता उन्हे देख कर बहुत खुश हुई। दो तीन दिन बाद उन्होने पड़ोसियो के घर जाकर देखा—द्रव्य न होने से वे लोग जाड़े से सिकुड रहे है। माता ने छहो लिहाफ लाकर उन लोगो मे बाँट दिए और विद्यासागर को लिखा—"बेटा, वह लिहाफ तो मैंने शीत-सताए गरीबो को बाँट दिए। दूसरे भेज देना।" ईश्वरचन्द्र ने बहुत प्रसन्न होकर लिखा, 'ऐसे लोगो के लिए, घर के लिए और तुम्हारे लिए कितने लिहाफ चाहिये—लिखो, मैं भेज दूँ।"

विद्यासागर हमेशा सादे वेश मे ही रहते थे, कालेज मे

भी चट्टी पहन कर और दुपट्टा ओढ कर पढाने जाते थे। छोटे लाट ने उनसे सनम्र अनुरोध किया कि आप कालेज मे कालेज रू (ड्रेस) वेश मे आया करें। कई बार कहने पर ४—५ दिन वे पतलून, चोगा-चपकन पहन कर पगडी देकर कालेज गए। पर उससे उन्हे कष्ट होने लगा और असुविधा मालूम होने लगी। पॉचवे दिन कालेज बन्द होते समय उन्होने साहब के पास जाकर कहा—“यहा आपकी मेरी आखिरी भेट है।” लाट साहब ने विस्मित होकर पूछा—‘क्यो पडितजी क्या हुआ।” स्वाधीनचेता विद्यासागरने मुसकुराते हुए उत्तर दिया—“कैदियो की तरह यह कष्ट-कर पोशाक पहन कर स्वाग बना कर आप से मिलने आना मेरे लिये असम्भव है।” कुछ सोच कर लाट साहब ने कहा—“पण्डित जी, जिस पोशाक मे आपको सुविधा हो उसी मे आया कीजिये।” उसके बाद वे फिर उसी अपने पुराने वेश मे जाने लगे।

कालेज से नौकरी छोडते समय छोटे लाट ने बहुत समझाते हुए उनसे कहा—“आपने इतना बडा समाज-सस्कार का काय उठाया है, नौकरी छोड देने से अर्थाभाव के कारण आपको बड़ा कष्ट होगा” विद्यासागर ने साहस के साथ उत्तर दिया—“मैं विपत्तियों को नही डरता न कष्टो को कष्ट समझता हूँ।”

अपनी स्वभाविक स्वाधीन-प्रियता के अनुसार उन्होने अपने इस्तीफे मे लिखा था—‘मेरे जीवन का अन्तिम समय उसी पवित्र कार्य (स्वदेश के नर नारियो की उन्नति, सेवा और साधारण शिक्षा प्रचार) मे लगेगा और उस महान व्रत का उद्यापन मेरी चिता के भस्म के साथ होगा।” इस वाक्य से पता चलता है कि विद्यासागर का हृदय कितना विशाल था उनका उद्देश्य कितना महान और उच्च था। वे कितने दृढ निश्चयी थे।

सचमुच उनका व्रत पूर्ण हुआ। जैसी प्रतिज्ञा थी उसी के अनुकूल पूर्ण हुआ।

अब ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का आज्ञा-पालन देखिये। जिस समय वे कालेज मे प्राफेसर थे, उनके भाई का विवाह हुआ। माता जी की आज्ञा विवाह मे शामिल होने का हुई। विद्यासागर न छुट्टी मागी परन्तु प्रिंसिपल ने देने से इन्कार किया। विद्यासागर विचार मे पड गए। फिर मातृ-आज्ञा का विचार आते ही साहब से जाकर बोले—"माता की आज्ञा है, घर तो मुझे जाना ही होगा और आज ही जाना होगा। छुट्टी दीजिय या इस्तीफा लीजिए"। मातृ-भक्ति से सन्तुष्ट होकर साहब न छुट्टी देदी। विद्यासागर एक नौकर को साथ लेकर चल दिए। वर्षा ऋतु थी। रास्ते ख़राब हो गए थे। चलना कठिन था। कुछ दूर चल कर वे उस दिन एक नदी के किनारे ठहर रहे। दूसरे दिन नौकर को चलने मे असमर्थ जान कर लौटा दिया। दमोदर नदी का वेग बडे जोरों का था, दूर तक पानी ही पानी दिखाई देता था। नाव दूसरे किनारे पर थी। आवेश मे आकर हाहाकार करते हुए वे नदी मे कूद पडे और तैर कर पार हो गए। एक और नदी मिली उसे भी पार किया। चलत चलते शाम हो गई। भयानक जङ्गल, लुटेरो का डर, पर साहसी विद्यासागर रुके नही चलते ही गए। दो घण्टे रात गए घर पहुँचे। बारात चली गई थी, घर मे सन्नाटा था। माता बिना भोजन किये पुत्र की चिन्ता मे अधसोई सी बैठी थी कि ईश्वर-की आवाज कान मे पडते ही जान सी आगई। उठ कर छाती से लगा लिया और साहस की आश्चर्य के साथ प्रशसा करने लगी।

विद्यासागर मे अभिमान तो नाम मात्र को न था। वे दूसरो को भी समान भाव से ही देखा करते थे। उनके एक बहुत बडे

प्रतिष्ठित जमीदार-मित्र के घर के पास ही एक गरीब तेली का घर था। विद्यासागर से उससे पहले की जान पहचान थी। एकदिन वे उसकी दूकान के नीचे चटाई के टुकडे पर बैठे हुए उससे बातें कर रहे थे। इतने मे उनके मित्र जमीदार बाबू की फिटन वहाँ से निकली। विद्यासागर को देखकर जमीदार महोदय बडे असमञ्जस मे पड गए। एक ओर जैसे बिना दण्डवत प्रणाम किए विद्यासागर की उपेक्षा करके जाना असभव था वैसे ही दूसरी ओर गरीब, मामूली तेली की दूकान पर बैठे हुए उनको प्रणाम या प्रतिष्ठा करने मे भी अपना अपमान मालूम होता था। लेकिन मजबूर थे। उन्हे अपमान की बात करनी ही पडी। दूसरे दिन मिलने पर विद्यासागर ने कहा—"कल तो आप बडी द्विविधा मे पड गए थे ? ' उन्हो ने उत्तर दिया—"आप रास्ते-गली मे जहाँ जिसके साथ होता है बैठ जाते है इससे बडी लज्जा मालूम होती है।" वीर विद्यासागर ने फौरन उत्तर दिया—"लज्जा मालूम होती है ? तब तो मेरे साथ जान-पहचान न रखना ही अच्छा है, इससे सब झगड़ा मिट जायगा। आप को गली २ अपमानित न होना होगा। वह आदमी गरीब होने से क्या आप की अपेक्षा कम आदर का पात्र हो सकता है ?" जमीदार महाशय बेचारे निरुत्तर हो गए और क्षमा माँगने लगे।

मनुष्यमात्र के लिए विद्यासागर की दया का द्वार खुला हुआ था। मनुष्य क्या, पशु-पक्षी तक उनसे प्रेम करते थे। एक बार उनके एक परिचित मित्र मिलने आए। विद्यासागर ने उन्हें कुछ नारङ्गी व सेव आदि खाने को दिए। वे उन्हे खा २ कर जब छिलके खिडकी के बाहर फेंकने लगे तो विद्यासागर ने कहा—"कृपा कर उन्हे बाहर न फेंकिए इन्हे भी खाने वाले यहाँ मौजूद हैं।" मित्र महाशय ने सन्नाटे मे आकर आश्चर्य से पूँछा—"इन्हे

भला कौन खाएगा ?" उन्होने कहा-" आप यहीं खिडकी के बाहर रख दीजिए। खानेवाले खा ही लेंगे।" खा पीकर वे बडी देर तक वही बैठे रहे पर उन छिलको को खाने कोई न आया, तब बोले—"आप तो कहते थे इनके खानेवाले भी आ जायगे, कहिए कोई भी तो नही आया ?" विद्यासागर ने हँस कर उत्तर दिया—"आपकी चोगा-चपकन की तडक भडक देखकर वे डर रहे है इसी से नहीं आते। आप हट जाएँ, देखिए अभी आते है।" मित्र महाशय हटकर जरा दूर जा खडे हुए। विद्यासागर खिडकी के पास जा खडे हुए। उन्होने देखा—बहुत से कौवे कॉव २ करते हुए आए और चिरपरिचित की तरह उनके हाथ से छिलके ले लेकर खाने लगे।

एक बार विद्यासागर जब स्कूल-इन्स्पेक्टर थे—एक स्कूल का मुआइना करने गए। उनका नाम और उनको कीर्ति लोगो ने पहले ही सुन रक्खी थी। किन्तु देखा न था। तमाम गॉव उनके आने की, और दर्शन करने की बाट जोहने लगा। रास्ताएँ सजा दी गई। जगह २ लडके, जवान, बुड्ढे, उनके आने को उत्सुकता मे, झुड के झुड, इधर उधर घूमने लगे। घरो की खिडकियो मे, दरवाजो के पास, छतो के ऊपर बल्कि बूढी औरते तक रास्ते मे उनके दर्शनो को खडी हुई थी चारो ओर अपूर्व उत्साह छाया था। इतने मे शोर मचा "विद्यासागर आगए, विद्यासागर आगए।" लोग अभ्यर्थना करने लगे। आदमी पर आदमी टूट पडे, किन्ही ने देख पाया किन्ही ने नही। इतने ही मे हल्ला मचा-"वे तो आगे निकल गए।" स्त्रियो को तो उनके आने का विश्वास ही न हुआ, इसका मुख्य कारण था उनके सीधे-सादेपन के साथ उनका मामूली पहराव। एक वृद्धा स्त्री से न रहा गया। उसने आगे बढ कर उस मडली मे जहाँ विद्यासागर खडे थे घुस-

कर उन्ही के पास खडेहुए एक वृद्ध आदमी से पूँछा—" क्योजी, विद्यासागर कहाँ है ? क्या वे नही आये ? " वृद्ध ने इशारा करके कहा—" यही तो विद्यासागर है । " वृद्धा आँखें फाड कर एकटक पहिले तो विद्यासागर की ओर देखती रही फिर बोली—" ये ही मोटी धोती मोटी चादरवाले विद्यासागर हैं ? इन्ही को देखने के लिए हम लोग इतनी देर से घाम मे खडी २ तप गई । न गाड़ी-घोड़ा है, न घडी-छडी है, न चोगा-चपकन है । यह तो हम लोगों ही की तरह हैं । "

विद्यासागर मे स्वाभिमान और तेजस्विता बेहद थी । वे एक दिन किसी विशेष काम से हिन्दू-कालेज के प्रिन्सिपल कार साहेब से मिलने गए । कार साहब मेज़ पर पैर फैलाए, आधे लेटे हुए, कुर्सीपर बैठे रहे । विद्यासागर को खडा रहना पडा । विद्यासागर ने चुपचाप उस अपमान को सह लिया और अपना काम करके घर लौट आए । लेकिन अपमान की बात चित्त से न भूली । दश पाँच दिन बाद ही किसी कार्य से कार साहब को विद्यासागर के घर आना पडा । विद्यासागर को बदला चुकाने का मौका मिल गया । वे भी साहब से मिलने मे उसी तरह मेज़ पर टाँगे फैलाए कुर्सी पर डटे रहे । साहब बडे कुपित हुए । उन्होने यह हाल मैट साहब से कहा । मैट साहब ने विद्यासागर से जवाब तलब किया । विद्यासागर ने कहा—"मैंने सोचा था कि हम काले आदमी हैं, इसी से असभ्य हैं, दूसरे देश के रहने वालो से सभ्यता सीखते है । साहब का बर्त्ताव देख कर मैंने समझा कि किसी के आने पर उसकी इसी प्रकार अभ्यर्थना की जाती है । मै यह शिष्टाचार कार साहब से ही सीख कर आया था और मौक़ा पड़ने पर साहब को वह सम्मान दिखलाने मे कुछ भी तो कृपणता नहीं की । इसमे यदि मुझ से कोई दोष हुआ हो

तो उसके ज़िम्मेदार साहब ही है। मेरा दोष नहीं।" विद्यासागर से अत्यन्त प्रसन्न होकर मैट साहब ने कार साहब को लिखा कि आप विद्यासागर से मिलकर मित्रता कर ले।

एक दिन एक गरीब भिखारी का लडका विद्यासागर के पास आकर बोला—"बाबू जी एक पैसा दे दीजिए।" उन्होने कहा—"यदि दो पैसा दूँ तो क्या करेगा?" उसने कहा—"भर पेट खा लूँगा" उन्होंने कहा, "यदि एक आना मिले।" उसने कहा—"दो पैसे का सौदा मैं खाऊँगा" दो की मा को ले जाऊँगा। उन्होने कहा— "दो आने दूँ तो?" उसने कहा—"एक आना कल के लिए रख छोड़ूँगा।" उन्होंने कहा—"चार आने दूँ" उसने कहा—"दो आने के आम लाकर बेचूँगा, दो आने खाने को रक्खूँगा।" उसके उत्तरों से विद्यासागर बहुत प्रसन्न हुए और उसे एक रुपया दिया। उनके यहाँ से कभी कोई विमुख तो लौटता ही नही था।

सचमुच ईश्वरचन्द्र केवल विद्या-सागर ही नहीं, दया-सागर भी थे।

५--श्री स्वामी विवेकानन्द



महात्माओ का वास-स्थान ज्ञान है। मनुष्यो की जितनी ज्ञानवृद्धि होती है, महात्माओ का जीवनकाल उतना ही बढता जाता है। उन के जीवन काल की गणना मनुष्य शक्ति के बाहर है क्यो कि ज्ञान अनन्त है, अनन्त का पार कौन पा सकता है। महात्मा लोग एक देश मे उत्पन्न होकर भी सभी देश अपने ही बना लेते है, सब समय उन के ही अनुकूल हो जाते है।

श्री स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही महापुरुषो मे है।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म १८६२ ई० मे कलकत्ता के समीपवर्त्ती सिमूलिया नामक ग्राम मे हुआ था। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था। जिस समय स्वामी विवेकानन्द बगाल मे 'अटर्नी' हुए तभी उन के पिता ने सन्यासाश्रम मे प्रवेश करके गृह-त्याग कर दिया। उसी आनुवशिक सस्कार के बीज स्वामी विवेकानन्द के हृदय मे भी जमे हुए थे जिन्हो ने अवसर पाकर अपना स्वरूप ससार पर प्रकट किया।

स्वामी जी का पैदाइशी नाम वीरेश्वर था परन्तु प्यार के कारण घर के लोग, अडोसी पडोसी सब उनको 'नरेन्द्र' कहते थे। नरेन्द्र सुडौल, गठीला शरीर, गौर-वर्ण, मनमोहक बडी २ आखें और तेजस्वी मुख वाला होनहार बालक था। उसका चित्त पढ़ने मे बहुत

कम लगता था, दिन रात खेलना, अपने साथ के लडको को तग करना, खूब ऊधम मचाना यही उसके विशेष प्रिय कार्य थे। कोई ऐसा दिन नही जाता था जिस दिन माता-पिता या गुरुजन को नरेन्द्र की दश पाँच शिकायतें सुनने को न मिलती हो। वह ज्यो २ बढता जाता था हँसोड और उपद्रवी होता जाता था। अपने सहपाठियो से मारपीट करना, शिक्षको से बहस मुबाहसा करना उसका नित्य का काम था।

बुद्धि तीव्र थी, पढे हुए पाठ को याद कर लेना नरेन्द्र के लिए खेल था। सहपाठियो को वह उनके पढने मे सहायता दिया करता था। तग किये जाने पर भी उसके सहपाठी, वादाविवाद से खीझ जाने पर भी उसके शिक्षक, उससे द्वेष न मानकर प्रेम करते थे और उस को आदर की दृष्टि से देखते थे। नरेन्द्र को तत्त्व ज्ञान सबन्धी पुस्तको से विशेष प्रेम था। कोर्स की पुस्तको मे इतना आनन्द न आता था जितना तत्त्व-ज्ञान विषयक पुस्तका मे। एक बार तत्त्व-ज्ञान का एक आलोचनात्मक लेख लिख कर प्रसिद्ध पाश्चात्य-तत्त्व-वेत्ता मोमासक हर्बर्ट स्पेन्सर के पास भेजा था, उस लेख को देख कर हर्बर्ट साहब ने दाँतो तले अगुली दबाई और नरेन्द्र को एक उत्तेजना-पूर्ण पत्र लिखते हुए लिखा—“आप अपना सतत उद्योग निरन्तर जारी रक्खें, बन्द न करें। हमे पूर्ण आशा है कि भविष्य मे ससार आप से उपकृत होगा।” आगे चल कर सचमुच नरेन्द्र ने अपने अदम्य उत्साह, अधिक परिश्रम, विचित्र बुद्धिमत्ता, अपूर्व स्वार्थ-त्याग और प्रेम-बल से ससार को अपना दास बना लिया।

जब उन्होने बगला के साथ २ सस्कृत और अगरेजी मे भी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली, बी० ए० पास कर लिया, उसी समय उन्हे पितृ-वियोग सहना पडा। गृहस्थी का कुल भार नरेन्द्र

के ही कधों पर आ पडा। नौकरी मे उनका चित्त न लगता था। दिनो दिन सासारकि झझटो से निवृत्ति की प्रवृत्ति ही चित्त मे बढ़ती जा रही थी। इधर माता जी उनके ब्याह के लिए प्रयत्न-शीला और व्याकुल हो रही थी। उन्होने प्यारे पुत्र के लिए बहुत प्रयत्न किया कि वह विवाह कर ले पर नरेन्द्र तो कामिनी काञ्चन की तृण तुल्य असारता का यथार्थ रूप पूर्ण तरह से समझ चुके थे। वे ब्रह्मचर्य पालन के कट्टर पक्षपाती थे और अपने को सदैव उसी स्वरूप मे देखना चाहते थे। वे लन्दन से भेजे हुए अपने एक पत्र में लिखते है —

"मुझे ऐसे मनुष्यो की आवश्यकता है जिन की नसे लोहे की हों, ज्ञान-तन्तु फौलाद के हो और अन्त करण वज्र के हो। क्षत्रियो का वीर्य और ब्राह्मणो का तेज जिन मे एकत्रित हुआ हो, मुझे ऐसे नरसिह अपेक्षित है। ऐसे लाखो नही, करोड़ो बालक मेरा दृष्टि के सामने है, मेरी आकाक्षाओ को पूर्ण करने के अकुर स्पष्टतया उन मे दिखलाई पड रहे है। परन्तु हा! उन सुन्दर बच्चो का बलिदान होगा। होमकुण्ड मे उनकी पूर्णाहुति कर दी जायगी। विवाह के होमकुण्ड की धधकती हुई ज्वालाये चारो ओर से घेरे हुए खडी है इन्ही ज्वालाओ के कुण्ड मे मेरे सुकुमार बच्चे निष्ठुरता पूर्वक झोक दिए जायगे। हे दयालु! इस जलते हुए अन्त करण से निकलने वाले करुणोद्-गार क्या तुम्हे नही सुनाई देते? यदि सत्य के लिए कम से कम ऐसे सा सुभट भी ससार की विशाल रण-भूमि मे उतर आवे तो कार्य पूर्ण हो जाय। प्रभो! तुम्हारी इच्छा होगी तो सब कुछ हो जायगा।"

बगाल प्रान्त मे उन दिनो 'ब्रह्म समाज' सम्प्रदाय का प्रचार दिनों दिन बढ रहा था। नरेन्द्र पहले ब्रह्मो समाज मे

शामिल हुए। थोडे ही दिनो के पश्चात् उन्होने जान लिया कि इस धर्म मे कोई सार नही, केवल ऊपरी चमत्कार, आडम्बर मात्र है। अस्तु अब वे ईसाई व मुहम्मदी तत्वो की ओर झुके, धर्मग्रन्थो का अनुशीलन प्रारम्भ किया, पर उन से भी शान्ति प्राप्त न हुई। सनातन धर्म पर उन्हे श्रद्धा न थी, वे लकीर के फकीर न बनना चाहते थे तथापि अन्वेषण-दृष्टि से एक बार फिर सनातन धर्म के वेदान्त उपनिषद, धर्म-शास्त्र का गहरी दृष्ट से अध्ययन प्रारम्भ किया।

जो शान्ति उन्हे पहले प्राप्त न हुई थी वही शान्ति वैदिक ग्रन्थो के अध्ययन से अब प्राप्त होने लगी। शनै २ उनका दृढ निश्चय होता गया कि ससार मे यदि कोई धर्म शान्ति दे सकता है तो वह एक सनातन धर्म है। ससार मे इसी धर्म के प्रचार की आवश्यकता है। यही एक धर्म सदैव निर्बाध रूप से सर्व जीव हितकारी हो सकता है। नरेद्र अब तक जिस भ्रम जाल मे फँसकर छटपटा रहे थे, हिन्दू शास्त्रो से वह जाल छिन्न भिन्न हो गया। अपना कर्त्तव्य पथ उन्हे दृष्टि-गोचर होने लगा। सद्गुरु कृपा की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। इधर उधर साधु सग करना प्रारम्भ किया। कोई झूठ ही कह दे कि अमुक स्थान पर एक योगी महात्मा आए हुए हैं तो नरेन्द्र सब कार्य छोड कर तत्काल ही वहाॅ पहुॅचते थे। कोई साधु महात्मा मिलता तो उस से भाॅति भाॅति के प्रश्न करके उसे घबराहट मे डाल देते थे। इस से लोग उन्हे दुराग्रही, कपटी, कुत्तर्की आदि नाना उपाधियो से विभूषित करने लगे थे। कोई २ महात्मा तो हठात् उन को परास्त करने की इच्छा से जाते और मुह की खाकर लौट आते थे। परन्तु नरेन्द्र की तो गुरु-दर्शन

की प्रबल अभिलाषा थी। गुरु मिलता कैसे न ? "जाको जा पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।"

उन्ही दिनो एक पहुँचे हुए महात्मा श्री स्वामा रामकृष्ण जी परमहस कलकत्ता के समीप दक्षिणेश्वर नामक स्थान मे रहते थे। वे स्वत तो सदैव ब्रह्म-लीन रहते ही थे परन्तु जिज्ञासु को भी अपनी अमृतमयी वाणी से तृप्त कर देते थे। नरेन्द्र के एक सम्बन्धी एक दिन नरेन्द्र को वहाँ चलने के लिए वाध्य करने लगे। 'आप जाकर दर्शन करे मेरे चलने से उनके, प्रति आपकी श्रद्धा कम हो जायगी' कह कर नरेन्द्र ने उन्हे टालना चाहा पर अन्त मे उन के विशेषाग्रह से जाना ही निश्चय किया।

कुछ बात चीत होने के अनन्तर "भगवन्, आपने ईश्वर सिद्ध तो कर दिया है परतु कभी देखा भी है ?" नरेन्द्र ने दिल्लगी भाव से पूँछा। "हाँ, मैने ईश्वर देखा है तुम्हे भी दिखला सकता हू" परमहस ने गभीर भाव से उत्तर दिया। थोडे समय बाद उपस्थित लोगो के चले जाने पर परमहस ने उन को समाधि लगा दी और नरेन्द्र को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई। नरेन्द्र को चिरेप्सित अभिलाषा पूर्ण हुई। वे परमहस रामकृष्ण के सच्चे शिष्य बन गए। कभी २ बडी २ सभाओ तक मे नरेन्द्र, गुरु-स्मरण करते हुए उनके चरण मे लीन हो जाते थे। एकबार जन समुदाय मे गुरु के प्रति उनके उद्‌गार थे "परमहस रामकृष्ण मेरे है, मै उनका हू। माता, पिता, गुरु, भ्राता, इष्टदेव, मन आत्मा, प्राण, स्वामी वे ही मेरे सब कुछ है। मेरे सद्‌गुण उनके है और दुर्गुण मेरे है, मुझे उन्ही के सहवास मे शान्ति मिली है।"

नरेन्द्र के सासारिक बधनो से मुक्त होने मे बाधक थी उनकी पुत्र-वत्सला माता। मातृ-भक्ति का उद्रेक सन्यास ग्रहण कर उन्हे अधिक दुखी न करना चाहता था।

परमहस स्वामी रामकृष्ण महाराज के निर्वाण प्राप्त करने पर, माता से किसी प्रकार आज्ञा ले, नरेन्द्र ने सन्यास ले ही लिया और ससार मे गुरु-मत प्रचार तथा सनातन धर्म को पुनर्जागृत करने का प्रण किया। अब से वे स्वामी विवेकानन्द नाम से नए रूप मे आविर्भूत हुए।

पैर मे सादा देशी जूता, कमर मे कोपीन, शरीर पर गेरुआ अगरखा और सिर पर साफा धारण किया। क्या देश क्या विदेश सभी जगह वे एक ही वेश से घूमे, हाँ, सर्दी के कारण विदेश मे बजाय सूती के ऊनी वस्त्रो का प्रयोग करते थे। उन के इस वेश से विदेश मे प्राय लोग उनकी खिल्ली उडाया करते थे।

एक बार अमेरिका मे किसी पथ से होकर जा रहे थे तो एक सभ्य पुरुष ने छडी से उनका साफा दूर उछाल दिया।

"आप जैसे सभ्य पुरुष ने यह कष्ट क्यो उठाया?" स्वामी जी ने पूछा।

उसने कहा—"भला आपने यह विचित्र वेश क्यो धारण किया है?"

"मै बहुत दिनो से इस देश की सभ्यता की प्रशसा सुनता था इसी से इस को देखने की इच्छा से आया था" स्वामी जी ने कहा महाँ की "सभ्यता का पहला पाठ आप ही ने मुझे पढाया।"

स्वामी जी के कथन से वह बहुत लज्जित हुआ और क्षमा मागते हुए घर की राह ली।

सन्यास लेने पर स्वामी जी ने एकान्त वास सेवन कर योगाभ्यास किया। विदेशो मे भी वे जब कब एकान्त वास करते थे। अद्वैतवाद के प्रचारार्थ वे चीन, जापान गए। वहा से लौट कर

भारत के इलाहाबाद बनारस, पूना, मद्रास आदि नगरो में घूमे। समस्त मानव जाति के प्रति सब भेद भावो को भुलाकर समान दृष्टि से धर्म प्रचार करना ही वे सर्वोपरि देश-सेवा समझते थे।

वे कहते थे—अपने ज्ञान का उपयोग ससार को करने दो, अन्यो के सीखने योग्य गुणो को तुम सीखो। आकुण्ठित विचारो को हृदय मे रखना मृत्यु का आह्वान है। जो दूसरो को स्वतन्त्रता नही दे सकते वे स्वय स्वतन्त्र होने योग्य नही।

स्वामी जी रामेश्वर से मध्य भारत की ओर आ रहे थे। रास्ते म रामनाथ के महन्त से भेंट हुई। महन्त ने स्वामी जी की विद्वत्ता पर मुग्ध हो कर उन से अमेरिका के सर्वधर्म परिषद् मे भारत के प्रतिनिधि स्वरूप जाकर हिन्दू-धर्म प्रचार की प्रार्थना की। स्वामी जी तो तयार ही थे सहमत हो गए। और मद्रास आदि मे घूम कर कुछ चन्दा एकत्रित किया। विदेश का खर्च थोडा चन्दा, अमेरिका पहुँचते २ रुपया खतम हो गया। कोई दूसरा पुरुष होता तो अवश्य घबडा जाता पर जिसकी चिन्ता ईश्वर को है उसे कैसा सोच। रास्ते मे एक वृद्धा स्त्री से भेंट हो गई। वह स्वामी जी का विचित्र वेष देख कर ' इस पूर्वीय जीव से कुछ विनोद ही होगा ' विचारती हुई उन्हे अपने घर ले गई। परन्तु घर मे विनोद के बदले तत्वज्ञान का उपदेश स्वामी जी के मुख से सुन कर वह स्तभित हो गई। अल्प समय मे ही अमेरिका के समाचार पत्रो मे स्वामी जी को कीर्ति-कथा पढी जाने लगी।

एक दिन एक अहम्मन्य तत्त्वज्ञानी स्वामी जी को परास्त करने की इच्छा से उनके पास आया परन्तु उनकी असाधारण विद्वत्ता और वक्तृत्त्व शक्ति पर मुग्ध होकर उसी समय उनका शिष्य हो गया। शिकागो की सर्व-धर्म-परिषद में स्वामी जी जब आये हुए

प्रतिनिधियो का अपनी रसमयी वाणी से स्वागत करते थे तो स्वामी जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा हो जाती थी।

परिषद मे जिस दिन स्वामी जी का भाषण होने को था, सबेरे से ही शहर की दीवालो पर लगे हुए विज्ञापन आगन्तुको को बतला रहे थे, "एक तेजस्वी विद्वान, अद्वितीय हिन्दू सन्यासी का व्याख्यान ४ बजे सुन कर अपने को तृप्त कीजिए।" सभा-भवन में तथा उसके चारो ओर इतनी ठसाठस भीड थी कि तिल रखने की जगह न थी।

यथा समय स्वामी जी व्यास-पीठ पर आ उपस्थित हुए। उनकी तेजस्वी और मनोहर मूर्त्ति देख कर द्रष्टाओ की आखें चकाचौंध हो गई। सब के तुमुल जय घोष के साथ 'ओ३म् तत्सत' का गात गाते हुए स्वामी जी ने मनोमुग्धकारी भाषण शुरू किया और अनेक युक्ति तथा प्रमाणो से साबित कर दिया कि एक हिन्दू धर्म ही ऐसा सार्वभौम धर्म है जिसे मानव जाति स्वीकार कर सकता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र अभिमान के साथ जय घोष करते हुए लिखने लगे—"गेरुआ वस्त्रधारी यह हिन्दू धर्मोपदेशक ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ जन्म सिद्ध वक्ता है। ऐसे प्रतिभाशाली देश मे मिशनरियो का भेजना मूर्खता है।"

गगा की धवल धारा की तरह स्वामी जी की कीर्ति अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि मे फैल गई। न्यूयार्क मे रामकृष्ण मठ' नामक एक सघ स्थापित हुआ जिस मे अब तक ध्यान, धारणा, प्राणायाम की शिक्षा दी जाती है।

अमेरिका जाने से पूर्व भारतीय जिनका नाम तक नही जानते थे, लौटने पर कोलम्बो (सीलोन) मे उनके स्वागत के लिए दश सहस्र पुरुष एकत्रित हुए और स्वामी जी का खूब स्वागत किया।

भारत के इलाहाबाद बनारस, पूना, मद्रास आदि नगरो में घूमे। समस्त मानव जाति के प्रति सब भेद भावों को भुलाकर समान दृष्टि से धर्म प्रचार करना ही वे सर्वोपरि देश-सेवा समझते थे।

वे कहते थे—अपने ज्ञान का उपयोग ससार को करने दो, अन्यो के सीखने योग्य गुणो को तुम सीखो। आकुण्ठित विचारो को हृदय मे रखना मृत्यु का आह्वान है। जो दूसरो को स्वतन्त्रता नही दे सकते वे स्वय स्वतत्र होने योग्य नही।

स्वामी जी रामेश्वर से मध्य भारत की ओर आ रहे थे। रास्ते म रामनाथ के महन्त से भेट हुई। महन्त ने स्वामी जी की विद्वत्ता पर मुग्ध हो कर उन से अमेरिका के सर्वधर्म परिषद् मे भारत के प्रतिनिधि स्वरूप जाकर हिन्दू-धर्म प्रचार की प्रार्थना की। स्वामी जी तो तयार ही थे सहमत हो गए। और मद्रास आदि मे घूम कर कुछ चन्दा एकत्रित किया। विदेश का खर्च थोडा चन्दा, अमेरिका पहुँचते २ रुपया खतम हो गया। कोई दूसरा पुरुष होता तो अवश्य घबडा जाता पर जिसकी चिन्ता ईश्वर को है उसे कैसा सोच। रास्ते मे एक वृद्धा स्त्री से भेंट हो गई। वह स्वामी जी का विचित्र वेष देख कर 'इस पूर्वीय जीव से कुछ विनोद ही होगा' विचारती हुई उन्हे अपने घर ले गई। परन्तु घर मे विनोद के बदले तत्वज्ञान का उपदेश स्वामी जी के मुख से सुन कर वह स्तभित हो गई। अल्प समय मे ही अमेरिका के समाचार पत्रो मे स्वामी जी की कीर्ति-कथा पढी जाने लगी।

एक दिन एक अहम्मन्य तत्त्वज्ञानी स्वामी जी को परास्त करने की इच्छा से उनके पास आया परन्तु उनकी असाधारण विद्वत्ता और वक्तृत्व शक्ति पर मुग्ध होकर उसी समय उनका शिष्य हो गया। शिकागो की सर्व-धर्म-परिषद मे स्वामी जी जब आये हुए

प्रतिनिधियो का अपनी रसमयी वाणी से स्वागत करते थे तो स्वामी जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा हो जाती थी।

परिषद मे जिस दिन स्वामी जी का भाषण होने को था, सबेरे से ही शहर की दीवालो पर लगे हुए विज्ञापन आगन्तुको को बतला रहे थे, "एक तेजस्वी विद्वान, अद्वितीय हिन्दू सन्यासी का व्याख्यान ४ बजे सुन कर अपने को तृप्त कीजिए।" सभा-भवन में तथा उसके चारो ओर इतनी ठसाठस भीड थी कि तिल रखने की जगह न थी।

यथा समय स्वामी जी व्यास-पीठ पर आ उपस्थित हुए। उनकी तेजस्वी और मनोहर मूर्त्ति देख कर द्रष्टाओ की आखें चका-चौंध हो गई। सब के तुमुल जय घोष के साथ 'ओ३म् तत्सत' का गान गाते हुए स्वामी जी ने मनोमुग्धकारी भाषण शुरू किया और अनेक युक्ति तथा प्रमाणो से साबित कर दिया कि एक हिन्दू धर्म ही ऐसा सार्वभौम धर्म है जिसे मानव जाति स्वीकार कर सकता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र अभिमान के साथ जय घोष करते हुए लिखने लगे—"गेरुआ वस्त्रधारी यह हिन्दू धर्मोपदेशक ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ जन्म सिद्ध वक्ता है। ऐसे प्रतिभाशाली देश मे मिशनरियो का भेजना मूर्खता है।"

गगा की धवल धारा की तरह स्वामी जी की कीर्ति अमेरिका, इग्लैण्ड आदि मे फैल गई। न्यूयार्क में 'रामकृष्ण मठ' नामक एक सघ स्थापित हुआ जिस मे अब तक ध्यान, धारणा, प्राणा-याम की शिक्षा दी जाती है।

अमेरिका जाने से पूर्व भारतीय जिनका नाम तक नही जानते थे, लौटने पर कोलम्बो (सीलोन) मे उनके स्वागत के लिए दश सहस्र पुरुष एकत्रित हुए और स्वामी जी का खूब स्वागत किया।

रामनाथ के महन्त ने हाथी-घोडो, गाजो-बाजो, ध्वजा पताकाओ, वाद्यो, रोशनी व अपार भीड के साथ उनका अपूर्व स्वागत किया और पाश्चात्त्य देशो मे दिग्विजयी होने के कारण अपने यहा एक विजय-स्तम्भ स्थापित किया।

स्वदेश मे स्वामी जी ने मद्रास, बगाल, उत्तर भारत और बबई आदि के भिन्न २ स्थानो मे घूम २ कर बहुत से व्याख्यान दिए। कितने ही स्थानो मे सस्थाएँ खोली जिनका मुख्य कार्य धर्म-प्रचार और गरीबो की सेवा करना है।

सन् १९०२ की ४ जौलाई को स्वामी जी ने नित्य की भाति प्रात कृत्य करने के पश्चात् योगाभ्यास किया। मध्यान्ह मे शिष्यो को पढाया। सध्या समय मुमुक्षुओ से धमचर्चा की, बाहर घूमने गए। पहर रात्रि गए तक बात चीत करते २ सहसा कहने लगे—"आज मेरी श्री गुरु-चरण दर्शनो की इच्छा है। नाशमान शरीर मे अमर आत्मा का कार्य कभी नही रुकता। देश की इच्छाओ को अब आप लोग पूर्ण करें, ईश्वर आपको सहायता दे" इतना कहने के साथ ही 'ॐ तत्सत्' कहते हुए अन्तिम श्वास छोड दी और परमात्मा मे लीन हो गए।

स्वामी विवेकानन्द जी बडे सयत पुरुष थे। अपनी धुन के एक थे। दृढ निश्चयी थे। पास घडी न रखने पर भी सब कार्य उनके यथा समय ही होते थे। उनमे तीन प्रधान गुण थे—१ नियमितता, २ देश, धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा, ३ स्वार्थ-त्याग पूर्वक अथक परिश्रम।

वे कभी खाली बैठना तो जानते ही न थे। १२–१४ घटे अभ्यास करना उनका नित्य का कार्य था। उनका सिद्धान्त था कि खाली बैठने से मनुष्य काहिल हो जाता है। खाली बैठन से बेगार करना अच्छा।

एक दिन उनके एक आलसी नौकर ने आकर कहा— " महाराज आप सब को मुक्ति की राह बतलाते है पर मुझे क्यो नही बतलाते जो दुनिया के झझटो से छूट जाऊँ । "

" मुक्ति के लिये उद्योग की आवश्यकता है , यदि तुम कुछ न कर सको तो चोरी ही सीख लो " स्वामी जी ने हँस कर कहा । " खाली बैठने से चोरी आदि सीखना अच्छा क्योकि उद्योग से ज्ञान होने पर बुरे कर्म छूट जाते है । "

वे अपने भारतीय मित्रो को प्राय लिखा करते थे " कि अब बार २ यह कहने का समय नही कि हम ऐसे जगद्विजयी थे, उद्योगी थे, हम ससार के गुरु थे, हम सर्वोपरि थे । अब कैसे हो सो ससार को दिखला दो । अपने कर्तव्य पथ पर बढे चलना तुम्हारा कार्य है , यश तो पीछे २ आप दौडता है । ससार का भार अपने ऊपर समझो , अपना भार ईश्वर पर छोड दो । अन्त करण की पवित्रता, धैर्य और दृढ निश्चय के साथ सतत उद्योग मे निरत रहो । मरने का मोह त्याग दो । कष्टो का सामना करने की, ससार की भलाई करने की, प्रतिज्ञा कर लो और उसका पालन करो । कहो कम, करो ज्यादा तभी सफल होगे । "

एक जगह स्वामी जी अपने एक मित्र के पत्र के उत्तर मे लिखते है —

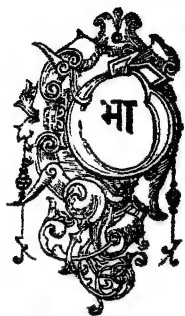
" तुमने लिखा कि कलकत्ते की सभा मे दश हजार मनुष्यो की भीड हुई । यह बडे आनन्द की बात है । पर सभा मे फी आदमी -) एक आना मागने पर कितने आदमी बैठे दिखलाई पडते इसका भी अनुभव करना था । निरुद्योगियो की सभा मे उद्योग की बात जहर मालूम होती है । जो कुछ भी करना है आचरण से सिद्ध करो, व्यवहार से सिद्ध करो, जब तुम्हारा आचरण और व्यवहार लोगो को हितकर मालूम होगा तो वे आप

से आप तुम्हारा अनुकरण करने लगेंगे। हमारा कर्त्तव्य है कि लोगो को धार्मिक जीवन और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखावे। बस, निन्दा स्तुति, सुख दुख का विचार छोड कर उठो और कार्य आरम्भ करो।

एक स्थान पर अपार जन समूह मे स्वामी जी का रथ खडा किया गया। वही स्वामी जी को उपदेश देना पडा। आपने कहा— "भगवान कृष्ण ने रथ मे बैठ कर गीता का उपदेश दिया था आज वही सौभाग्य मुझे प्राप्त है। कर्म करना और उद्योग करना मनुष्य के हाथ मे है। फल और यश ईश्वर के हाथ मे है। मै उस दिन अपने को धन्य समझूगा जिस दिन आप लोगो का यह उत्साह कार्य रूप मे परिणत होगा।

स्वामी जी की वाणी मे अद्भुत मधुरता और आकर्षण शक्ति थी। श्रोताओ पर उनके उपदेश का बिजली की तरह असर होता था। अपने उपदेश मे वे किसी की बुराई करना तो जानते ही न थे फिर भी हिन्दू धर्म की खूबी का सिक्का लोगो के हृदय मे जमा देते थे। लोग मत्रमुग्ध की भाति उनके व्याख्यानो को सुनते थे। अग्रेजी और सस्कृत पर उनका असामान्य अधिकार था। स्वामी जी का मत था " उदार चरिताना तु वसुधैव कुटुम्ब-कम्। " मनुष्य जाति को वे समान दृष्टि से देखते थे। हिन्दी-सस्कृति पर उन्हे अभिमान था, उस का प्रचार और अध्यात्मज्ञान का प्रचार उनके जीवन का लक्ष्य था। ब्रह्मचर्य की वे साक्षात् मूर्ति थे। देश सेवा, परोपकार, शिक्षा प्रसार उनके कार्यों के मुख्य अङ्ग थे। उनका जीवन ससार के लिए आदर्श था। कोई भी मनुष्य स्वामी जी के उपदेशो के अनुसार चल कर अपना जीवन सफल बना सकता है।

६--श्री जमशेद् जी नसरवान जी ताता



रतवर्ष का धनिक समाज साधारणत दान-धर्म और उपभोग मे धन व्यय करता पाया जाता है परन्तु प्रसिद्ध दानवीर स्वर्गीय जमशेदजी नसरवान जी ताता ने अपनी अतुल सम्पत्ति का उपयोग एक भिन्न रीति से ही किया। भारतवासी ही नही बल्कि अन्य देशीय भी आज तक उनके नाम के साथ उनको दानवीर की पदवी से विभूषित करते है। उनका चरित्र हमारे लिए शिक्षाप्रद है।

गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत नवसारी नामक प्रसिद्ध स्थान मे सन् १८३९ ई० मे इस महा पुरुष का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम था सेठ नसरवान जी ताता, जो कि एक साधारण व्यवसायी पुरुष थे। तेरह वष की आयु मे जमशेद जी विद्याभ्यास के लिए बम्बई भेजे गए। पर जो गुलामी की जजीरो का बन्धक होकर 'हाँ हजूर' नही करना चाहता था, जिसे वकील बनकर अपने देशवासियो को नही लड़ाना था न उनके खून को चूस कर मोटा होना था, जमीदार बनकर जिसे दीन किसानो के पैदावार की कच्ची कुर्की नही करानी थी, जिसे डडी मार कर लोगो को नही ठगना था, जिसके हाथ मे भारत की कारीगरी के उद्धार का यश था, जिसको अपने अशिक्षित और मन-मोदक खाने वाले देशवासियो को परिश्रम की शिक्षा देनी थी, जिसको निरुद्यमी भारत के लिये पानी से बिजली

पैदा कर साहस और चातुर्य का नमूना दिखाना था, जिसे एक नई शिक्षा की जरूरत थी, वह इन किताबो का कीडा कब हो सकता था ? उसकी प्रवृत्ति कालिज की पढाई की ओर कब हो सकती थी ? उनका चित्त तो व्यापार सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान की आर ही अधिक लगता था इसी से ताता अधिक समय कालेज मे न पढ सके। उन्नीस वर्ष की आयु मे ही अपने पिता के कार्यालय मे कार्य करने लगे ।

इसमे सन्देह नही कि किसी भी देश की उन्नति, अवनति उसके व्यापार पर ही अवलम्बित है। बृटिश राज्य के प्रशस्त शासन का मध्य विन्दु व्यापार ही है । जापान की उन्नति का कारण उसका व्यापार है। अमेरिका की स्थिति ही व्यापार की वृद्धि पर है। सम्पन्न देश के व्यापार-क्षेत्र का विस्तृत होना अनिवार्य है। "व्यापारे वसते लक्ष्मी" लक्ष्मी का वास-स्थान व्यापार मे ही है।

देश का कच्चा माल परदेश को भेज कर अल्प लाभ प्राप्त कर लेना वास्तविक लाभ नही है न उससे देश सपन्न ही हो सकता है। देश धन-धान्य-पूर्ण तभी हो सकता है जब उसकी अर्थोत्पादक शक्ति के बढाने का सतत प्रयत्न चालू रक्खा जाय । ताता के व्यापारिक विचार का यही दृष्टिकोण था। उन्होने भारतवर्ष की आर्थिक व्याधि की उचित चिकत्सा अपने प्रबल प्रयत्नो द्वारा की और उस मे सफल हुए । एकबार इन्होने रुई का रोजगार किया। इस मे बडा मुनाफा हुआ। आगे के लिए और भी अधिक मुनाफे का विचार कर और भी बढकर तयारी की। परन्तु दैव-योग से विचार ठीक न उतरा अन्य लोगो के साथ उनको भी बड़ा धक्का लगा। अमीर गरीब हो गए। गरीब भिखारी बनगए और

भिखारी भूखो मरने लगे। ताता परिवार को इस क्षति से बडा धक्का लगा।

साधारण आत्माए जिन वाधाओ से घबडा कर कर्तव्यच्युत हो जाती है, ध्येय भ्रष्ट हो जाती है, महा पुरुष उनसे ही और दृढ होते है तथा अपने को धैर्य की शिक्षा देते है। वात भी ऐसी ही है। यदि विघ्न-वाधाओ का सामना न करना पडे तो आदमी कमजोर हो जावे। उसकी परीक्षा का कभी समय ही न आवे और न वह परखा जा सके। साहसी और निकम्मे की इसी मे तो पहचान है। दुखियो का दुख दूर करने के लिये महापुरुषो को पहले दुख और विपत्तियो का पर्वत ढहाना ही पडता है। निदान ताता ने हिम्मत न छोडी। इगलैड का कारोबार बन्द कर दिया लेकिन हिन्दुस्तान का वैसा ही चलाते रहे। थोडे ही दिन बाद उनकी स्थित फिर सभल गई।

ताता ने सोचा कि काम इस प्रकार करना चाहिये जिससे भारतवर्ष दुनियाँ के बडे बडे देशो का मुकाबला कर सके। विलायती कपडो का मुकाबला करने के लिए यह देख लेना चाहिये कि उनकी तरक्की का कारण क्या है। देखना है कि किस तरह मजदूरी महगी होने पर भी विलायत के सस्ते और नुमायशी कपडे बाजारो मे पटे रहते है। अपने दरिद्र भाइयो के रक्त का पैसा समुद्र पार जाने से कैसे रुकेगा? इसी प्रकार की बाते विचार कर ताता यहाँ से इग्लैण्ड को चल दिए।

सौभाग्य से ताता पारसी जाति के थे जो कभी अपने धर्म को अपनी उन्नति मे बाधक नही होने देते। वे हिन्दू न थे, नहीं तो पडित मडली फौरन ही अपने जीर्ण-शीर्ण धर्मशास्त्रो के पन्ने लेकर और उनके काले अक्षरो के उलटे सूधे अर्थ लगा कर धर्म

की दुहाई देने लगती। आलसी, डाही, और पाखडी पचायत, बिरादरी से बाहर ढकेलने का प्रस्ताव पास कर देती।

व्यापारिक ज्ञान-प्राप्ति के लिए ताता को अनेक बार जापान, अमेरिका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, इटली, आदि देशो का प्रवास करना पडा। चीन मे उन्होने "ताता कम्पनी" नामक दूकान खोली जिसकी शाखाएँ न्यूयार्क, पेरिस, जापान, हाँग-काँग आदि मे स्थापित की गई। तमाम भारत मे भ्रमण करने के पश्चात् उन्होने नागपुर मे पहले "एम्प्रेस" मिल खोली।

जमीन खरीदी गई, इमारतें बन गई। कार्य प्रारम्भ हो गया। "इम्प्रेस" मिल के लिए सर वेजनजी दादाभाई मैनेजर नियुक्त हुए। सर वेजन जी दादाभाई जैसे मैनेजर का मिल जाना भी भाग्य की ही बात हुई। सर वेजनजी इसके पहले जी० आई० पी० रेलवे के ट्रैफिक मैनेजर थे। कपडे का अनुभव यद्यपि आपको बिलकुल नही था। लेकिन आप मे परिश्रम, चातुर्य्य और ईमान-दारी बेहद थी। 'इम्प्रेस' मिल की जो उन्नति हुई उस से कहा जा सकता है कि मैनेजर के चुनाव मे ताता ने कितनी बुद्धिमत्ता की। देश की कला-कौशल की उन्नति चाहने वालो के लिए सर वेजन जी ऐसे कार्य-दक्ष मैनेजरो की उतनी ही आवश्यकता है जितनी ताता जी जैसे दूरदर्शी पूजी पति की।

ताता के मस्तिष्क की नई २ उपज और वेजन जी का उसे कार्य रूप में परिणत करके फलरूप मे ले आना दोनो ही बाते अद्भुत कुशलता का परिचय देती है। मिल खूब चलने लगी और धडल्ले से लाभपूर्वक काम होने लगा।

ताता ने इसके बाद इधर उधर अनेक मिलें खोलीं। पर जो सफलता उन्हे 'एम्प्रेस' मिल से हुई वह दूसरी मिलो से नहीं।

इसका मुख्य कारण था 'किसी कार्य से पूर्व उस के स्थान और फल की पूरी २ जॉच करना'। 'एम्प्रेस' मिल यथार्थ मे भारतवर्ष की अद्वितीय मिल है जिसमे वस्त्र का व्यापार हाता है।

भारतवर्ष मे लाहे और कोयल की खाने बहुत हैं। प्रसिद्ध भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ताआ से ताता ने चन्द्रपुर, भण्डारा, बिलासपुर, हलोहारा, आदि स्थानो की वैज्ञानिक रीति से परीक्षा करवाई। इस मे लाखो रुपये खर्च किए। लोहे सम्बन्धी वैज्ञानिक रीतियो को सीखने के लिए ताता अमेरिका गए। वहाॅ से आकर लोहे के कल कारखाने आदि खोल दिए जो आज कल खूब फल फूल रहे है और जिनम देश का लाभ तो हो ही रहा है साथ ही देश का धन भी स्वदेश मे ही रहता है। लोहे को सभी चीजें प्राय. ताता कम्पनी की बनी हुई मिले।

हमारे देश मे विलायती माल अधिकता से आने के कारण यहाँ के लोगो की रुचि महीन कपड की ओर बढती जा रही है, यह देख ताता ने यहाॅ भी महीन कपडा बुनवाने का प्रयत्न किया। हिन्दुस्तान मे लम्बे धागे की कपास, जिससे महीन कपडा बुना जाता है न होने के कारण ताता मिश्र देश को गए और वहा का प्रसिद्ध कपास की खेती-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया। यहाँ लौट कर उन्होने सिन्ध और मैसूर मे सैकडो एकड़ ज़मीन ली और मिश्र देश की कपास की खेती करके सिद्ध कर दिया कि अनुकूल परिस्थिति से सब कुछ हो सकता है।

ताता ने पाश्चात्त्य देशो से उद्योग धधे की बात सीखी। जल से बिजली निकाल कर रुपये पैदा करने की युक्ति और उसका व्यापार भारत के लिए बिलकुल नई बात है। बिजली की कम्पनी ताता के व्यवसायो मे सब से अधिक महत्त्व की बात है और इस देश

मे पहली चीज है। लोगो का ख्याल था कि ससार मे चीरापूजी के बराबर पानी कही नही बरसता। लेकिन अनुभवी लोगो का विचार है कि बम्बई के पश्चिमीघाट पर्वत के मुकाबले चीरापूजी मे बारिश नही होती। यह अगाध जल बहकर अरबसागर मे मिल जाता था। कोई इसको उपयोग मे लाने वाला न था।। किसी ने इस गभीर विषय पर विचार ही नही किया था। इस काम के लिए जमशेद नासरवान जी ताता का जन्म हुआ। मरने के तीस वर्ष पहले से ताता इस विषय पर बराबर सोचते रहे।

यद्यपि उनके जीवन मे यह कार्य प्रारम्भ नही हुआ, उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके सुयोग पुत्रो ने इस कार्य को पूरा किया पर इसमे सन्देह नही कि इसका विचार ताता के ही मस्तिष्क की उपज थी। नाव उन्होने ही डाली थी। १९११ ई० मे इमारत बनी और चार वर्ष बाद धाराप्रवाह खोलने का उत्सव किया गया। पहले मालूम होता था कि कम्पनी की पूजी के लिए काफी रुपया न मिलेगा लेकिन बात की बात मे दो करोड रुपये इकट्ठा होगए। पानी एकत्रित करने का इतना बडा कारोबार शायद दुनिया मे दूसरा नही है। इस कारखाने मे पीपे से इतना पानी निकलता है जितना ससार की प्रसिद्ध टेम्स नदी मे सात महीनो मे बहता है।

कितनी प्रसन्नता की बात है कि इस कार्य को न सिर्फ एक भारतीय ने उठाया बल्कि कुल पूजी भी भारतीयो ही ने लगाई और उसके मालिक भी सब भारतीय ही है। वर्षा का पानी पश्चिमीघाट पर्वत पर जमा किया जाता है। वहा से नीचे उतारा जाता है। नीचे उतारकर उससे बिजली पैदा की जाती है फिर वह बम्बई मे पहुँचाई जाती है। एकलाख बीस हजार घोडे—ताक़त की बिजली तयार होती है।

इस देश की शिक्षा की उन्नति के लिए यदि किसी ने सबसे बडा उद्योग किया है, तो वे जमशेद जी नसरवान जी ताता ही हैं। उन्होने सोचा इस देश मे प्राचीन काल मे शिक्षा मुफ्त दीजाती थी। विद्या बेचना पाप ही नही घोर पाप समझा जाता था। विद्यादान से बढकर कोई दान नही समझा जाता था, सब से बढकर विद्या धन ही था। उस समय बाहरी टीमटाम की आवश्यकता न थी। अब मामूली मदरसो तक के लिये हजार दो हजार की पहले इमारत ही चाहिये। विश्वविद्यालयो के लिए लाखो, करोडो रुपये की आवश्यकना पडती है उस पर भी न मातृभाषा की पढाई न ऐसी पढाई जिससे कुछ जीवन को वास्तविक लाभ हो या मातृभूमि की सेवा की जा सके। अन्त मे वही दूसरो का मुँह ताकना पडता है। नौकरी की शरण लेनी पडती है। कोई भी ऐसा स्वतत्र व्यवसाय नही सिखलाया जाता जिससे भारतीय विद्यार्थी ससार क्षेत्र के उन्नति मार्ग मे अग्रसर हो सके।

यदि किसी ऐसे व्यवसाय को सीखना है या उच्च शिक्षा प्राप्त करनी है तो विदेशों को जाना आवश्यक होता है। दूसरो का मुँह ताकना पडता है। भारत एक तो वैसे ही गरीब फिर उसके विद्यार्थी विदेशो मे किस प्रकार जा सक्ते है, उन्हें खर्च कहा से मिल सकता है। क्यो न भारत मे ही ऐसा विश्व-विद्यालय खोला जावे जिसमे आविष्कार सम्बन्धी उच्च शिक्षा दी जा सके। उसके लिए न दूसरो का मुख ही जोहना पडे न अधिक खर्च की आवश्यकता ही पडे। इन्ही सब बातो का पूर्ण रीति से विचार कर, देशहित से प्रेरित हो कर श्री जमशेद जो नासरवान ताता ने तीस लाख की सम्पति गवर्नमेट को इसीलिए सौपदी कि उससे ऐसा विश्व-विद्यालय खोला जाय जहा भारतीय शिक्षित-समुदाय वैज्ञानिक आविष्कारो का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करसके। इस विद्या-

लय की रचना, उसके पाठ्य विषयो की शिक्षा आदि के सम्बन्ध मे बम्बई सरकार ने उचित कानून बना दिए है और ठीक ढग से शिक्षा दी जाती है।

भारतवर्ष की गरीबी के विषय मे ताता जी की वही राय थी जो स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी, की थी। राजनैतिक मामलो मे ताता के विचार बहुत ऊँचे थे और सब से अच्छी बात तो यह थी कि वे उनके प्रगट करने मे डरते न थे।

सर फीरोजशाह मेहता ने—जो ताता के जीवन के अद्वितीय ज्ञाता थे, कहा था। "ताता जी सार्वजनिक जीवन मे पूरा भाग लेते थे। दूसरा कोई आदमी ऐसा नही था जिसके राजनैतिक विचार ताता जी से अधिक जोरदार हो। यद्यपि वे सभा मे खडे होकर बोलते नही थे लेकिन सहायता और सहानुभूति मे सदैव आगे रहते थे। देशहित कार्यों मे सहायता देना और उनसे प्रेम करना उन्होने भली भाँति सीखा था। उनके जीवन मे एक यह विशेषता भी अवश्य थी कि राजाओ को भी वे समान रूप से प्रिय थे।

सन् १९०४ ई० मे ६५ वर्ष की अवस्था मे प्रसिद्ध महापुरुष ताता ससार को व्यापारिक सफलता का आदर्श सिखलाते हुए इस ससार से कूच कर गए। स्वास्थ्य बिगडजाने के कारण डाक्टरो की सलाहस वे मिश्र, केरो, नेपल्स तथा यूरोप के अन्यान्य शहरो मे घूमते हुए वियना पहुँचे परन्तु उनकी शक्ति दिनोदिन क्षीण ही होती चली गई। अन्त मे वे जर्मनी के एक गाव मे ले जाए गए और वही उनकी मृत्यु हुई। इस दुखद समाचार से भारतवर्ष मे हाहाकार मच गया। अपूर्व दानवीर और कर्मवीर की मृत्यु से सभी को दु ख हुआ।

भारत के अलौकिक हितैषियो मे से ताता भी एक पुरुष-रत्न थे। शिक्षित भाइयो के सच्चे मित्र एव धनिको के सच्चे आदर्श थे। व्यापारी समाज तो उन्हे अपना राजा मानता है। ताता यदि केवल एक बडे व्यापारी या महादानी ही होते तो शायद इतनी प्रसिद्धि न पाते जो इस समय पारहे है। किन्तु उनमे तो कितने ही ऐसे अनुकरणीय गुण विद्यमान थे जिससे हमको बहुत शिक्षाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

उनका तमाम चरित्र अनुकरणीय विशेषताओ से भरा हुआ है, उनका उद्योग भारतीय सम्पत्तिशाली धनिकों और राजाओं के लिये आदर्शवाद है। यदि भारत के पूजीपति ताता की तरह अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करे तो निस्सन्देह आज ही भारत की गणना सभ्य देशो मे होने लगे। ताता ने अपनी बुद्धि की कुशाग्रता से जो अतुल सम्पत्ति प्राप्त की वह भारत के घर घर मे भर जावे। यदि हमारे जमीदार और कृषक समुदाय ताता की भाति कृषि मे उद्योग करे तो कितनी सफलता प्राप्त हो यह कहना व्यर्थ है। देशहित-चिन्तन ताता के जीवन का मुख्य लक्ष्य था। वे अपने प्रत्येक कार्य से देश को उन्नत बनाना चाहते थे।

श्री जमशेदजी नासरवान ताता ने कर्त्तव्य ही को अपने जीवन का आदर्श बनाया। सत्कार या मान की तो कभी अभिलाषा ही न की। ताता का जहा सार्वजनिक जीवन सफलता और उपकार पूर्ण था वहाँ निजी जीवन मे भी वे बहुत ही सर्व प्रिय थे। उनके साथ का आनन्द वे ही लोग जानते हैं जिनको उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्राय भोजन के समय वे अपनी आनन्दवार्त्ता और विनोदपूर्ण कहानियो से सब को प्रसन्न किया करते थे।

उपर्युक्त न्यूनाधिक विवरण से ज्ञात होता है कि स्वर्गीय ताता ने अपने व्यापार के बल पर कैसे २ देश-हित के बडे २ कार्य किए हैं। देश को ऐसे ही उदार नेताओ की आवश्यकना है जो केवल अपने ही स्वाथ साधन मे सलग्न न रहे अपितु देश-हित का भो ध्यान रक्खे। ताता के चरित्र पर बार बार विचार और मनन करने से उनका महत्त्व हमारी समझ मे आजाता है और हम को इस बात का शिक्षा मिलती है कि गुलाम देश मे नौकरा के अतिरिक्त मनुष्य का क्या कर्त्तव्य-कार्य है जिससे वह अपनी तथा अपने देश की कुछ भी भलाई कर सके। सचमुच ताता के चरित्र से हम बहुत से लाभ उठा सकते है।

७--श्री स्वामी रामतीर्थ



नके हृदय मे गरीबो के प्रति दया है, अपने देश और समाज के प्रति सच्ची सहानुभूति है, जो अपनी प्रतिभा और बुद्धि के बल से देश मे जागृति फैलाकर उसे उन्नत बना सकते है, जो देश और समाज की रक्षा करने की सामर्थ्य रखते हैं, वास्तव मे वे सच्चे साधु है, वे सच्चे कर्मनिष्ठ सन्यासी है।

स्वामी रामतीर्थ भारत के ऐसे ही सन्यासियो मे थे। पजाब प्रान्त मे गुजरानवाला जिले के मराली नामक ग्राम मे सन् १८७३ ई० मे ब्राह्मण कुल मे उनका जन्म हुआ। उनके पिता का नाम था गोस्वामी हीरानन्द जी। गोस्वामी हीरानन्द जी की स्त्री बड़ी सुशीला और पतिव्रता स्त्री थी। स्वामी रामतीर्थ का पहिले नाम था तीर्थ राम।

बालक तीर्थराम को उत्पन्न होने के १०-५ दिन बाद ही मातृ-वियोग की असहनीय वेदना सहनी पडी पर उनका लालन-पालन उनके बडे भाई गोस्वामी गुरुदास जी तथा उनके पिता की बहन ने किया।

तीर्थरामजी मे शारीरिक शक्ति बिलकुल ही न थी। उस समय की दयनीय दशा को देख कर कोई यह विचार भी नही कर सकता था कि यही बालक एक समय ५०-५० मील की पहाडी यात्रा पैदल एक दिन मे पार करेगा। अमेरिका के जगलो मे दौड मे फौजी सैनिको को भी परास्त करेगा।

तीर्थरामजी की प्रारम्भिक शिक्षा अपनी ग्राम-पाठशाला मे ही हुई। दुर्बल शरीर के होने पर भी उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। पढने लिखने मे वे ख़ूब मन लगाते थे। यूनीवर्सिटी तक मे प्रथम नम्बर रहे। बहुत सीधी सादी चाल से रहते थे। अभिमान तो छू कर नही निकला था। वाणी मे अपूर्व मधुरता थी। खेल कूद उनको बिलकुल ही पसन्द न था। कालेज की पढाई के अतिरिक्त उनका तमाम समय अध्यात्म-चिन्तन मे ही जाता था। तीर्थराम जी को गणित विषय से विशेष प्रेम था। २१ वर्ष की आयु मे एम ए पास करने के बाद स्यालकोट मिशन कालेज मे गणित के प्रोफेसर हो गए।

उन दिना गुजरानवाला मे एक भगत रहते थे, जो धन्ना भगत के नाम से प्रसिद्ध थे। धन्ना भगत विशेष पढेलिखे व्यक्ति न थे परन्तु पवित्रात्मा आर वेदान्त के गूढ रहस्यो के ज्ञाता थे। उनका नाम चारो ओर तो प्रसिद्ध न था, हॉ, आस पास के गावो के सर्व साधारण उन पर बडी श्रद्धा रखते थे और उनकी अमृत- मयी वाणी से निकले हुए उपदेशामृत को बडे चाव से पीते थे।

तीर्थरामजो ने भी धन्ना भगत का नाम विद्यार्थी अवस्था मे ही सुना था और तभी से उनके पास जाने लगे थे। धन्ना भगत, तीर्थराम की प्रतिभा देखकर उन पर मुग्ध थे। घटो उनको उपदेश दिया करते थे। तीर्थरामजी भी भगत जी के उपदेशो को बडे ध्यान से सुनते और उन पर विचार करते थे। पढने के बाद का अधिक समय वे भगत जी के सत्सङ्ग मे ही व्यतीत करते थे। उनके उपदेशा का तीर्थरामजी के हृदय पर अच्छा प्रभाव पडा। भगत जी वेदान्ती थे, वेदान्त की ही शिक्षा देते थे। वही शिक्षा तीर्थरामजी को भी मिली। वेदान्त दर्शन के गूढ तत्त्वो के

समझने के साथ ? भगत जी के सत्सङ्ग से तीर्थरामजी को एक अपूर्व लाभ यह हुआ कि भगत जी के अनुरोध मे ही उनके पिता ने उन्हे उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर किया वर्ना उनकी इच्छा उन्हे व्यापार मे डालने की थी। यदि तीर्थरामजी को धन्ना भगत का सत्सङ्ग न हुआ होता तो तीर्थराम जापान, अमेरिका मे वेदान्त का झडा फहरा सकते या नही (?) इसमें सन्देह था।

छात्रावस्था से ही तीर्थरामजी को ससार से विरक्ति हो चली थी। वेदान्त के वे पक्के अनुयायी हो चुके थे। धन्ना भगत को जो पत्र भेजा करते थे, उनमे प्राय ईश्वर चर्चा ही होती थी। एक पत्र मे वे अपने गुरू (धन्ना) को लिखते है—" परमेश्वर मुझे बडा ही प्यारा लगता है। सभी को उससे प्रेम रखना चाहिए। ससार का एक तिनका भी बिना उस की स्वय इच्छा के नही हिलता। जब तक नचाने वाला न हो कठपुतलियाँ नाच नहीं सकतीं। बिना बजाने वाले के बाँसुरी बज नही सकती। इसी प्रकार ससार के सब काम उसी एक सत्ता की प्रेरणा से होते हैं।" एक दिन अपने एक सहपाठी के भी " आपकी यथार्थ इच्छा क्या है ? " पूछने पर यही उत्तर दिया था कि " मै कुछ दिनो ही पढाकर देशाटन और उपदेश करना चाहता हूॅ। उपदेश द्वारा पारमार्थिक अविद्या अन्धकार से मनुष्यो को निकालना ही मेरा मुख्य कर्त्तव्य है" ।

अन्त मे २६ वर्ष को आयु मे अपने दृढ निश्चय के अनुसार गृहस्थी के जाल तोड, सासारिक बन्धनो से मुख मोड सन्यास धारण कर ही लिया। अपना नाम तीर्थराम से रामतीर्थ रक्खा। स्वामी रामतीर्थ ने सन्यास धारण कर जिस समय घर छोडा है उस

समय उनके पिता, पत्नी, पुत्रो से लगाकर मित्रो, कुटुम्बिया, नगर वासियो तक की विचित्र दशा थी। मानसिक वेदना थी। करुणा-जनक दृश्य था। दु ख का मुख्य कारण था असमय सन्यास ग्रहण करना। परन्तु जिसका चित्त ससार से निवृत्ति पाचुका है उसके लिए असमय कैसा ? सासारिक रुकावटे उसका क्या कर सकती है। कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति के सम्मुख कोई रुकावट बाधा नही डाल सकती। वह तो सारी वासनाओ पर, ससार के तमाम ऐश्वर्यो पर लात मारकर उन्हे मिट्टी के ढेले के समान फेककर अनन्त लाभ की ओर देखना है। स्वामी रामतीर्थ जनसमूह के कष्ट की परवाह न कर कर्त्तव्य-पथ-गामी हुए। उनके चलते समय का दृश्य एक कवि ने क्या ही कारुणिक शब्दो मे खीचा है। वह लिखता है —

वृद्ध पिता माता की आशा, बिन ब्याही कन्या का भार,
शिक्षा-हीन सुतो की ममता, पतिव्रता नारी का प्यार।
सन्मित्रो की प्रीति और कालेज वालो का निर्मल प्रेम,
त्याग, एक अनुराग किया उसने विराग मे, तज सब नेम।
"प्राणनाथ ! बालक सुत दुहिता" यो कहती प्यारी छोडी,
"हाय वत्स वृद्धा के धन" यो रोती महतारी छोडी।
चिर सहचरी 'रयाजी' छोडी रम्य तटी रावी छोडी,
शिखा, सूत्र के साथ साथ उन बोली पञ्जाबी छोडी।
शोक ग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई विदाई जब,
द्रवी भूत कैसे न होय मन सन्यासी हो भाई जब।
खिन्न, अश्रु-मुख वृद्ध लगे कहने ' मगल तव मारग हो,
जीवन्मुक्त सहाय ब्रह्मविद्या मे सत्त्वर पारग हो।

इस प्रकार माता पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री सब का मोह तृणवत् त्याग महात्मा रामतीर्थ महाव्रत के व्रती हुए।

सन्यास ग्रहण के पश्चात् ही स्वामी जी ने कुछ दिन एकान्त वास किया। कुछ लेख, निबन्ध आदि भी लिखे। जिनमे देश के प्रति अपूर्व प्रेम, ससार के प्रति पूर्ण वैराग्य, ईश्वर के प्रति प्रगाढ सत्त्य निष्ठा थी, एक जगह लिखते हैं—

"ओ नीलाकाश! अब तू स्वच्छ हो जा। भारत भूमि पर मडराए हुए मेघो! दूर हो जाओ, हमारी इस पवित्र भूमि पर मत मॅडराओ। ऐ हिमालय के हिम! अपनी पवित्रता और शुद्धता को स्थिर रक्खो। द्वैतभाव से कलुषित जल पवित्र मैदान मे मत ले जाओ।"

एक स्थान पर 'माया' शीर्षक निबन्व मे वे लिखते है —

'मेरे सामने एक नवयुवक ने सुगन्ध लेने के निमित्त एक गुलाब-पुष्प तोडा। ज्योही वह उस सूघने को हुआ, पुष्प मे बैठी हुई मक्खी ने उसकी नाक मे काट खाया। फूल नवयुवक के हाथ से गिर पडा और वह उसकी वेदना से रोने लगा। निस्सन्देह कोई भी विषयो से परिपूर्ण ऐसा गुलाब नही है जिसमे दु ख रूपी मक्खी न छिपी बैठी हो। जो वासनाए रोकी नही जा सकती उनके लिए दण्ड मिलना अनिवार्य है।"

एकान्त सेवन और तपस्या के पश्चात् स्वामी जी इधर उधर घूम कर प्रचार-कार्य करने लगे। साल छै महीने भारत मे घूमने के पश्चात् जापान, अमेरिका, मिश्र आदि की यात्रा की। मिश्र में मुसलमानो ने बडी धूमधाम से उनका स्वागत किया और अपनी मस्जिद मे व्याख्यान करवाया। उनके शानदार भाषण पर विश्व विद्यालय के एक प्रोफेसर ने कहा था "अभी तक हमे दार्शनिक देखने को नही मिला था यही एक सच्चा दार्शनिक विद्वान देखने मे आया है" अमेरिका आदि मे स्वामी जी को एक एक दिन

मे छै छै व्याख्यान देने पडते थे परन्तु लोगो की अध्यात्मिक पिपासा शान्त न होती थी।

वहाॅ तो स्वाामी जो ने अपने शारोरिक बल का भी परिचय दिया था। पानी मे बीस २ मील तैरते चले जाते थे। फौजी सैनिका के साथ कई २ मील की दौड बदी जाता थी जिनमे सब से आगे निकल जाते थे। एक अमेरिकन मेम, वृद्ध और यात्रा मे असमर्थ होने पर भी, केवल श्रद्धा-वश राम के दर्शनो को भारतवर्ष आई थो। यहाँ की भाषा से अनभिज्ञ होते हुए भी बहुत समय तक यहाॅ रही। जिस समय वैदिक सस्कृति की विजय दुन्दुभी वजाते हुए स्वामी जी भारतवर्ष को लौटे तो यहाॅ उनका अपूर्व स्वागत हुआ।

भारत मे आकर स्वामी जी ने यहाॅ भी व्याख्यानो का ताॅता बाँध दिया। क्योकि उन्हे वही से यह लो लगी थी कि अन्य देशो की भाॅति भारतवर्ष की भी उन्नति होनी चाहिए। जहाॅ कही वे पहुँचते थे नवजीवन का सञ्चार हो जाता था। उत्तर भारत का कोई ही ऐसा स्थान होगा जहाॅ स्वामी जी का व्याख्यान न हुआ हो। स्वामी जी की अभिलाषा कुछ ग्रन्थ लिखने की थी पर दुर्दैव काल की कुटिल नीति का प्रहार हुआ, तेतीस वर्ष की ही उम्र मे ईश्वर ने हम मे से स्वामी रामतीर्थ को अपने पास बुला लिया।

दिवाली का दिन था, घर २ मकानो की शुद्धि हो चुकी थी, दीपो से घर जगमगा रहे थे, रोशनी से आँखे चकाचौध हो रही थी, ठीक इसी समय धोखे मे ही हमारा धन हम से छीन लिया गया।

स्वामी जी ने इस दिन, पहले जो लेख आदि अधूरे थे उन्हे पूरा किया। मरने से कुछ पूर्व एक लेख लिखा जिसमे मृत्यु का

आह्वान था। वे लिखते हैं —"ऐ मृत्यु! तू आ, बडी खुशी से आ। याद रख मुझे इस शरीर की किञ्चिन्मात्र भी परवाह नही है। मेरे पास तो वह शरीर है जिससे मेरा व्यवहार रुक ही नही सकता। मै तो चन्द्रमा की किरणो के रुपहले तार धारण कर जीवन व्यतीत कर सकता हू। पहाड नदी नालो के वेश मे मस्त रह सकता हूँ। ऐ मृत्यु! तू नही जानती मै समुद्र की लहरो के साथ नाचता फिरूँगा। मै अनेक रूप हूँ। इस रूप मे मैं पर्वत-शिखरों से उतरा, कुम्हलाए पौधो को हरा भरा किया, सुमनो को हँसाया, बुलबुलो को रुलाया सोतो को जगाया, खडो को बढाया, इसे छेड, उसे छेड, तुझे छेड, यह आया वह गया, न कुछ साथ रक्खा न किसी के हाथ लगाया"। इत्यादि

लेख लिख कर वे गङ्गा स्नान करने गए और वही जल समाधि मे लीन हो गए। लोगो ने समझा वे अकस्मात डूब गए है। सात दिन तक बराबर खोज होती रही परन्तु कही कुछ पता न चला, अन्त में जब लोग हार मान कर बैठ गए तो देखा गया कि स्वामी जी का पद्मासनस्थ शरीर एक गुफा मे मुख खोले बैठा हुआ है। खुले हुए मुख से प्रतीत हो रहा है कि स्वामी जी 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण कर रहे है। यह देख सब को बडा आश्चर्य हुआ।

स्वामी जी के जीवन मे यह भी एक अद्भुत बात देखने मे आई कि उन का जन्म दिवाली के दिन हुआ। सन्यास भी उन्होने दिवाली के ही दिन लिया और शरीरत्याग भी दिवाली को ही किया।

स्वामी रामतीर्थ का जीवन शान्ति और प्रेम से भरा हुआ, प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण एक सरस राग है। यह राग अश्रुत पूर्व

नही है। उपनिषदो के उपदेश को स्वामी जी ने प्रचारित किया। उन्होने अपने अन्त करण से ऊँचे शब्दो मे–मनुष्यो को विभिन्नता त्यागने का, स्वार्थ छोडने का, अनेकत्त्व से एकत्त्व मे आने का और परमार्थ चिन्तन का उपदेश दिया। उन्होने मनुष्यो को घृणा से प्रेम और युद्ध से शान्ति का पाठ पढाया। उनके व्याख्यान भावपूर्ण होते थे, वे व्याख्यान देते देते आवेग मे स्वय भी कभी २ रो उठते थे। उनके प्रत्येक शब्द मे प्रेम होता था, आध्यात्मिक गभीर विचार ध्वनित होते थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि मनुष्य मतमतन्तारा के अड्डो मे न पड कर परब्रह्म का सच्चा स्वरूप समझे।

स्वामी रामतीर्थ अपने को राम बादशाह कहा करते थे। उनके उपदेश 'राम बादशाह के हुक्मनामे' नाम से प्रसिद्ध है। उनका भारत माता के प्रति असीम प्रेम था, फिर भी वे अपने का किसी देश विशेष या जाति विशेष का न मानते थे। सारी वसुन्धरा उनकी थी और वसुन्धरा के वे थे। वे कहा करते थे—

बादशाह दुनियाँ के है मुहरे मेरी शतरज के।
दिल लगी की चाल है सब रग सुलह व जग के॥

स्वामी रामतीर्थ की आत्मीयता आवेशपूर्ण थी। कभी २ तो वह महीनो तक मौन व्रत धारण कर लेते थे मानो ससार के प्रति उनका कुछ सन्देश ही नहीं। परमानन्द मे निमग्न हो जाते थे। कभी २ ज्वालामुखी पर्वत के तुल्य जब उनकी हृदयाग्नि भभकती थी ता बडे जोर शोर से अपने विचारो को प्रगट करने लग जाते थे। बहते हुए जल और स्वच्छ नीलाकाश को देख कर उन्हे आनन्द होता था और शान्ति मिलती थी। वह चट्टानो पर घास मे घण्टो आँखें बन्द किये पडे रहते थे।

इसमे कोई सन्देह नही कि यदि स्वामी जी अल्प समय मे ही समाधिलीन न हो जाते तो उनमे भारत ही नहीं ससार का विशेष उपकार होता। क्याकि उनके विचारा मे स्वार्थत्याग, विश्व-प्रेम निर्भीकता, आत्म-विश्वास, दृढता और शुद्धता कूट कूट कर भरी थी।

— —

८--श्री रमेशचन्द्र दत्त ।



सार मे आकर जो अकुतोभय अपनी पवित्र आत्मा की आज्ञा मानने के लिये देश, काल, समाज, किसी की भी परवाह न कर अपने दृढ सकल्प को ही पूरा करते हैं—चरित्र-दृढता, सत्य-प्रेम और कर्त्तव्य-परायणता से दूसरो के आदर्श रूप बनते है। ऐसे ही पुरुषो की गणना मे श्री रमेशचन्द्र दत्त, सी० आई० ई०, का भी नाम लिया जाता है।

रमेशचन्द्र दत्त का घराना बङ्गाल मे बहुत समय से प्रसिद्ध है। उसी अति प्रसिद्ध घराने मे सन् १८४८ ई० मे रमेशचन्द्र जी का जन्म हुआ। इनके पिता ईशान चन्द्र जी ऑगरेज़ी पढे लिखे योग्य विद्वान पुरुष थे। उसी के अनुसार हमारे चरित नायक भी पढ़ने लिखने मे विलक्षण बुद्धि रखते थे। पिता जी की नौकरी दौरा मे होने के कारण यद्यपि रमेशचन्द्र की पढाई एक ही स्थान पर नहीं हुई फिर भी जहाँ २ आप पढे अपनी तीव्र-बुद्धि का परिचय दिया और पारितोषिक प्राप्त करते रहे। पुत्र की योग्यता पर सन्तोष प्रकट करते हुए पिता ने कहा—मैं तुझे विलायत पढने के लिए भेजूगा। दु ख है कि वे अपने पिता के सम्मुख विलायत न जा सके।

१५ वर्ष की अवस्था मे रमेश चन्द्र जी ने एन्ट्रेस की परीक्षा पास की। स्कूल में प्रथम नम्बर होने के कारण १४) रु० मासिक

को छात्रवृत्ति भी मिली। एन्ट्रेंस पास होने के पहले ही रमेश-चन्द्र जी का व्याह हो गया था और पिता के मर जाने से गृहस्थी का तमाम भार उनके कधो पर आ पडा था पर वे घबडाए नही, पढना बन्द नही किया। एफ० ए० मे भी दूसरे नम्बर आए। पहले नम्बर वाले लडके से सिर्फ १ नम्बर कम था। उसमें इनको ३२) रु० की छात्र वृत्ति मिली।

उन्नीस वर्ष की अवस्था मे अपनी उत्कट अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए इन्होने विलायत यात्रा को प्रस्थान कर दिया। और वह घर वालो से छिपाकर भागकर विलायत पहुँचने पर अपने भाई योगेशचन्द्र को उन्होने जो पत्र लिखा था उससे उनकी महत्त्वाकाक्षा का परिचय मिल ा है। वे लिखते हैं

"जहाज पर बैठे हम लोग चारो ओर के विचित्र दृश्यो को देख ही रहे थे कि मेरे चित्त मे दूसरे ही भाव हिलोरे लेने लगे। हम लोगो ने अपना घर बार, बन्धु-बान्धव एक ऐसे कार्य के लिए छोडे है जिसे पिछले अनुभव के आधार पर हम असम्भव सा कह सकते हैं। और वह कार्य, वहाँ करने जा रहे है जहाँ कोई मित्र नहीं, स्वकीय या प्रियजन नही। यदि हम उद्देश्य मे सफल न हुए तो समझिए अपने भविष्य को ही नही सर्वस्व को बिगाड रहे है। यदि हमारी प्रवृत्ति की सूचना जरा भी किसी को हो जाती तो हमारा आना यहाँ न हो पाता। हमारे रक्षक कभी समुद्र पार जाने की आज्ञा न देते। परन्तु हमने पिछले अनुभवो की उपेक्षा करके एक असम्भव कार्य-साधन के लिये छिपकर भाग निकलना ही श्रेयस्कर समझा। पता नही हमारी उसमे विजय होगी अथवा यहाँ से लौट कर स्वदेश मे समाजच्युत होकर दीन मनुष्यो का सा जीवन बितावेंगे। इस प्रकार के विचार हमारे भविष्य को भयानक बना रहे थे। सफलता की आशा रूपी

एक भी किरण इस अन्धकार को दूर करने के लिए कहीं न दिखलाई देती थी।' सचमुच उस समय जब कि विलायत यात्रादि को लोग नहीं जाते थे, रमेशचन्द्र और उनके साथियो ने साहस का कार्य किया।

वहा जाकर रमेश चन्द्र जी ने सिविल सर्विस परीक्षा की तयारी प्रारम्भ का। जोरो के साथ पढना शुरू किया। उनका तो कहना है कि "हमने सिविल सर्विस परीक्षा के लिए जितना पढा और परिश्रम किया उतना उमर भर नहीं पढा'। एक वर्ष कठिन परिश्रम के साथ पढ कर परीक्षा के लिए बैठे। ३२५ अग्रेज विद्यार्थी थे जिनमे से पचास चुने गए। दुनिया की परीक्षाओ मे सब से कठिन यह परीक्षा है। दत्त महोदय ने अग्रेजी, गणित दर्शन, विज्ञान तथा सस्कृत मे परीक्षा दी। लखबद्ध और मौखिक एक महीने तक परीक्षा होती रही। मौखिक परीक्षा मे अग्रेजी के परीक्षक ने इनसे पठित पुस्तको के नाम पूँछे। इन्होने एक लम्बी लिस्ट सामने रख दी जिसे देख कर आश्चर्य के साथ उसने पूछा—"क्या वास्तव मे तुमने इतनी पुस्तकें पढी है" ? इन्होने कहा—"अवश्य"। जब परीक्षा परिणाम विदित हुआ तो हमारे चरित-नायक का नम्बर सब मे तीसरा था। तब तो अग्रेज मित्रो तक ने उन्हे बधाई-पत्र लिखे। इसके पश्चात् रमेशचन्द्र जी ने बैरिस्टरी परीक्षा पास की और सिविल सर्विस के अन्तिम चुनाव मे उनका दूसरा नम्बर रहा। आई सी एस की परीक्षा पास करके योरोप के कई देशो मे घूमते हुए और वहा के शासनों का अध्ययन करते हुए वे स्वदेश लौटे।

विलायत से लौटते ही रमेशचन्द्र जी अलीपुर मे असिस्टेट मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। एक वर्ष मे ही सब डिवीजनल आफीसर हो गए। इसी समय इन्होने कितनी ही पाठशालाओ की सरकारी

रुपय और अपने निजी रुपये मे महायता कर शिक्षा की उन्नति की।

धीरे २ दत्त महोदय को कलक्टर का पद मिला और अन्त मे बड सम्मान के माथ व कमिश्नर के पद पर सुशोभित हुए। यह प्रथम अवसर था जब कि एक भारतीय सज्जन इस उच्च पद पर नियुक्त किए गए। इस समय एङ्गलोइडियन मे बहुत वाद-विवाद उठा। इडिया-कौंसिल तक प्रश्न पहुचा परन्तु दत्त की योग्यता मे किसी प्रकार की शका न थी इससे उन्हीं को यह पद दिया गया।

मि० दत्त की मातहती मे अग्रेज कलक्टरो तक को कभी किसी प्रकार की शिकायत का मौका न मिला क्योकि कार्य उन्होंने ऐसी कुशलता से किया कि सरकार मे मान बढता ही गया। छोटे लाट ने उनकी दक्षता देख कर अपनी व्यवस्थापक कौंसिल का मेम्बर बना लिया। वहाँ के कार्यों से उनकी और भी प्रशसा हुई। किसी भी उच्च-पदाधिकारी के लिए जिस विदग्धता की अतीव आवश्यकता होती है उस गुण मे रमेशचन्द्र जी भरपूर थे। यही कारण था कि सब लोग सदैव उनसे सतुष्ट रहते थे। मातहतो के साथ उनका अनुकरणीय व्यवहार रहता था। वे उनसे बडी चतुराई और उदारता से कार्य लिया करते थे। चाहे अग्रेज हो चाहे भारतीय, किसी से कभी उनकी अनबन न होती थी।

इस प्रकार अपना अधिकाश समय नौकरी मे बिताकर अपनी अद्भुत कार्य-कुशलता का परिचय देकर रमेशचन्द्र ने पेन्शन लेली। यदि व चाहते तो ८-१० वर्ष और नौकर रह सकते थे पर तीन विशेष कारणो से और अधिक समय उसमे न लगाना चाहा। प्रथम तो नौकरी और द्रव्योपार्जन उनका मुख्य मन्तव्य न था। साहित्य-सेवा को वे सर्व्वोच्च मानते थे। द्वितीय,

स्वच्छन्दता से देश सेवा करना चाहते थे। तीसरे, स्वास्थ्य भी कुछ बिगड़ चला था।

अपने कार्य काल मे वे किसानो से बहुत सहानुभूति रखते थे और उनकी यथाशक्ति सहायता करते थे। नौकरी छोड़ने के पश्चात् उन्होने जो पुस्तके लिखी है वे अधिकतर किसानो के ही स्वत्त्वो का समर्थन करती है।

जब रमेशचन्द्र ने नौकरी छोड कर साहित्य-सेवा मे पदार्पण किया तो उसमे अपनी अद्वितीयता का परिचय दिया और सदा के लिए अमर हो गए। अगरेजी पद्य मे रामायण, महाभारत लिख कर आँगल-साहित्य मे अपने को अमर बना लिया। और भी कितनी ही पुस्तके अगरेजी मे लिखी। एक पुस्तक किसानो की दशा पर लिखी जिसमे उनके स्वत्त्वों को बढाने के साथ २ सरकार की पालिसी की कडी आलोचना की। जमीदारो की लम्बी खबर ली। इस पुस्तक पर बडी २ कडी समालोचनाए हुई। सरकार मे बडी पूँछताँछ रही। किसानो की दशा की जाँच पडताल की गई और अन्त मे उनके स्वत्त्वो की रक्षा के लिए नए कानून बनाए गए। अँगरेजी मे लिखने के बाद उनका ध्यान अपनी मातृभाषा बङ्गला की ओर आकर्षित हुआ और कई एक उपन्यास तथा साहित्यिक पुस्तकें लिखी जिनका बडा आदर हुआ।

उन्होने ऋग्वेद सहिता का अनुवाद किया। यद्यपि सकोच-बुद्धि-वाले पडितो को यह बहुत खटका पर रमेशचन्द्र जी अच्छे कार्य और सकल्प से कब पैर डिगाने वाले थे। उसे पूरा ही करके छोडा। इससे योरोप क्या भारत मे सर्वत्र इनकी कीर्ति फैल गई और बडा सम्मान प्रदर्शित किया गया। उन्होंने "प्राचीन भारतीय सभ्यता का इतिहास" लिखा जो पढने योग्य है।

कुछ साहित्य सेवा के बाद जब रमेशचन्द्र ने योरोप व भार‍त भ्रमण किया तो जगह २ उनका बडा आदर हुआ। मान-पत्र दिए गए। व्याख्यान करवाए गए जिनका लोगो पर बहुत प्रभाव पडा। विलायत जाकर भारतीयो की स्वत्त्व रक्षा जो उचित थी, बराबर करते रहे। देश की दीन दशा, दुर्भिक्ष तथा तत्सबधीय अन्य आथिक प्रश्ना को वक्तृना, लेख तथा पुस्तको द्वारा श्वेत जनता के सम्मुख रक्खा। महाराज बडौदा के विशेष आग्रह स विलायत से भारत लौट कर कुछ समय तक बडौदा राज्य के दीवान का पद ग्रहण किया।

रमेशचन्द्र दत्त की स्वदेश-प्रियता का पता इसी बात से चलता है कि वे अखिल भारतीय राष्ट्र सभा के दो बार सभापति बनाए गए। दत्त के सभापति बनाए जान पर लोगो को आश्चर्य हुआ कि एक सिविलियन काग्रेस का सभापति! पर जब उन्होने अपने विचार प्रगट किए तो भारतीय जनता उनकी भूरि २ प्रशसा करने लगी। उनका निश्चित विचार था कि काग्रेस ही भारतीयो के सच्चे विचारो और आकाक्षाओ को प्रगट कर सकता है। उनका सभापति की हैसियत से दी हुइ वक्तृता महत्वपूर्ण थी। अपढ कृषको और भारत की आर्थिक दशा की खासी विवेचना की गई थी। इसी वक्तृता के कारण भारत सचिव और हाउस आफ कामन्स मे बडी खलबली मच गई। इस प्रकार उनकी योग्यता को भारतीयों ने बडी कृतज्ञता से स्वीकार किया और उच्च से उच्च पद जो उनके हाथ मे है उससे उन्हे विभूषित किया।

बडोदे का अमात्त्य पद ग्रहण करके उसमे कर सम्बन्धी सुधार, शासन सम्बन्धी सुधार, शिक्षा सबधी सुधार, व्यापार सम्बन्धी सुधार किये। पञ्चायतें बोड आदि खोलकर लोगो मे स्थानीय स्वराज्य का सूत्रपात कर दिया। यह कहने मे

अन्युक्ति न होगी कि बडौदा रियासत की उन्नति का श्रेय रमेशचन्द्र दत्त महोदय को भी है। सरकार ने उनके कार्य से प्रसन्न हो उन्हे सर की उपाधि दी।

श्री रमेशचन्द्र दत्त ने साधारण रूप से नरमी के साथ भारतीय जनता की ऑखे देश की वास्तविक दशा सुझाकर खोलने की की, जिसके लिए भारत चिरकाल तक उनका ऋणी रहेगा। यावज्जीवन उन्होने सरकार और प्रजा दोनो का कल्याण किया।

जब वे बडौदा मे ही प्रधान सचिव थे, एक भोज के आयोजन मे ही हृदय मे दर्द पैदा हो गया पर वे उसे बर्दाश्त करते हुए प्रबन्ध मे सलग्न रहे। वहाँ से लौटने पर चारपाई पर ऐसे पडे कि दो सप्ताह तक उठ न सके और अन्त मे सदैव के लिए इस ससार से चल बसे। मृत्यु के समय रमेशचन्द्र दत्त की अवस्था इकसठ वर्ष की थी। रमेशचन्द्र दत्त जी ने अपने जीवन को खूब चमकाया। अक्षय कीर्ति प्राप्त की।

वे अपने कर्त्तव्य पालन का ध्यान मुख्य रूप से रखते थे। उसके सामने सुख दुख, छोटाई बडाई आदि का कभी प्रश्न ही न आने देते थे। एक बार दुर्भिक्ष के समय वे एक जगह वहाँ का प्रबन्ध करने के लिए भेजे गए। वहाँ जाकर उन्होने बडी तत्परता और कुशलता से कार्य किया। जाँच पडताल करके दीन दुखियो को सहायता पहुँचाई, उसी मे नदिया जिले के प्लेएटर से कुछ झगडा हो गया जिस के कारण उन्हे अपनी नौकरी मे उच्च पद तक पहुँचने मे सन्देह होने लगा। उन्होने जो कुछ किया था उचित किया था इसलिए झगडे की कोई पर्वाह न की और न उसके लिए पश्चात्ताप करना ही उचित समझा। अपने भाई को एक पत्र लिखा—"मनुष्य दैव से निश्चित सुख दुख के सामने कुछ नही कर सकता, वह तो उसे भोगना ही पड़ता है। मै उच्च पद

पर जाने वाला था परन्तु इस घटना के कारण मुझे ज्ञात होता है कि अब उस मे बाधा पडेगी लेकिन मुझे इसकी कोई चिन्ता नही है क्योकि मै अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हू इस कारण मुझे महान सन्तोष प्राप्त है। इसके सम्मुख धनी मनुष्य के सुख तुच्छ है"।

मि० दत्त जब आखरी बार विलायत गए तो विचार किया कि इग्लैड की जनता भारत की दशा से बहुत ही कम परिचित है। जो लोग कुछ जानते भी है वे भारतीय सिविलियन है। वे अपने कृत्यो को बुरा कहना उचित नही समझते। इसलिए प्रतिष्ठित जनो के हृदय को भारत की दीनावस्था का परिचय देकर उसके सुधार के लिए प्रेरित करूँगा। अपनी पुत्री सरला को एक पत्र लिखते हुए लिखा—"अब मेरे इस वर्ष भारत को लौटने की कोई आशा नहीं है। मुझे लेखन-कला मे विशष प्रयत्न करना पडेगा। कम से कम दो वर्ष मे यह ज्ञात होगा कि मै किस कार्य के करने के योग्य हू। यदि मै लेखन कला मे कृतकृत्य हो सकू तो सरकारी उच्च से उच्च पद मे भी कोई आनन्द नहीं। हाँ, मै यह कह सकता हू कि मेरी असफलता का कारण पूर्ण परिश्रम का अभाव न होगा।"

रमेशचन्द्र दत्त इतने उच्च पद तक पहुँचे, कई बार विलायत गए, प्राय बडे २ अग्रेजो के साथ रहे पर अपनी प्राचीन सभ्यता का सदैव ध्यान रक्खा और गृहादर्श भी उसीके अनुसार बनाने का प्रयत्न किया। उनके घर मे जरा भी पश्चिमीय सभ्यता की बनावट न थी, वे अपने आप तथा स्वकीयो को सौजन्य का नमूना बनाने मे सफल हुए। धर्म-पत्नी ज्ञान तथा बुद्धि मे इनके समान न थी फिर भी मि० दत्त ने उन से भारतीय गृहणी का व्यवहार रक्खा, भाई से उनका अद्वितीय प्रेम रहा। बिना भाई की सलाह लिए

उन्होंने कभी कोई कार्य नही किया । प्राय लोग कन्या की अपेक्षा पुत्र पर अधिक स्नेह रखते है पर रमेशचन्द्र दत्त जी का अपनी कन्याओं तथा पुत्रो पर समान प्रेम था, जरा भी किसी को कम ज्यादा न समझते थे । कन्याओ के प्रति भेजे हुए उनके पत्रो मे भी उनके पवित्र और अपूर्व प्रेम की झलक दिखलाई पडती है ।

एक पत्र मे वे लिखते है "बालासोर एक अच्छा स्थान है । आजकल मै उडिया सीख रहा हूँ अत अब जब मै तुम से मिलूगा तो अपनी नवीन शिक्षा से तुम्हे चकित कर दूगा । मेरी ओर से अपने पति को प्यार कहना ।"

भाई के एक पत्र म लिखते है "आज मेरा चौंतीसवाँ साल समाप्त हो गया । इन पिछले बारह महीनो मे मेरी दो बार कलेक्टरी के पद पर नियुक्ति और कमला का विवाह य दो बाते मेरे लिये आनन्द वर्धक हुइ । मैने कमला के सम्बन्ध मे अधिक रुचिकर समाचार पाये ।"

एक पत्र मे पुत्री को लिखते है "मै इस बात को भली भाँति जानता हूँ कि तुम हम लोगो के पत्रो के लिए कितनी उत्सुक रहती होगी विमला, जब मै तुम से कुछ ही बडा था और विलायत को चला गया था तो मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि मै घर से पत्रो की उत्सुकता सहित कितनी प्रतीक्षा किया करता था और कितने प्रेम से उन्हे पढा करता था । वही बात मुझे तुम्हारे लिये याद आ जाती है इसी से प्रत्येक सप्ताह तुम्हे पत्र लिखता रहता हूँ । तुमको विश्वास रखना चाहिए कि तुम्हारे प्रत्येक पत्र का उत्तर हम ठीक समय पर अवश्य लिखते रहेगे ।"

मेरी प्यारी विमला, मैं बडे ही चाव से प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि छुट्टी मिलने पर तुम्हारे नए घर पर आऊँ और तुम्हारे

साथ दो चार दिवस शान्ति तथा आनन्द मे विता सकूँ। मुझे विश्वास है कि मेरी प्रिय पुत्री अच्छी तरह मेरी खातिर करेगी। मुझे तुम्हे देख कर न जाने कितना आनन्द होगा।" तुम गान विद्या मे अभ्यास बढाए जाओ जब मै आसाम को आऊगा तो खूब सुनूगा। ध्यान रहे कि अब कोई सकोच न होवे, न शरम। वहा पर दीदी सहायता करने को न होगी। तुम्हे अपने प्रिय गीत उच्च स्वर से गाने पडेंगे और इस प्रकार तुम रात्रि तथा दिन को मेरी अन्तरात्मा को मोद और उछाह से भर दोगी।"

एक पत्र से मि० दत्त के राजनैतिक विचार प्रगट होते हैं जिसे उन्होने आपने भाई को लिखा था। वे लिखते हैं "वह पत्र मिला जिसमे आपने राजनैतिक विषया मे अधिक भाग न लेने को लिखा है परन्तु मै जानता हूँ कि मै काग्रेस पार्टी के साथ न्याय और शासन विभाग को अलग करने में सहानुभूति प्रकट करने से कुछ खोने की सभावना कर रहा हूँ। इन वातो से हमारे अफसर लोग हम से असन्तुष्ट होगे और कदाचित पूर्ण रूप से मेरे कमिश्नर होने मे बाधा डालेंगे। कोई निर्मूल कारण भी बतला देगे। लेकिन इतना खोने के लिए मैं प्रत्येक समय प्रस्तुत हूँ मुझे इसमें कोई हानि नहीं समझ पडती। मुझे इसमे बडा आनन्द आता है कि इस प्रकार मै केवल अपने देश की ही सेवा नही करता वरन् सरकार मेरी शक्ति को कुछ न कुछ सोचने तो लगती है।

मि० दत्त स्त्रियो के साथ भी बिलकुल समान, बराबरी का ही व्यवहार रखते थे, जरा भी भेद न समझते थे। स्त्रियाँ भी प्राय उनके स्वभाव को समझ गई थी इससे जहाँ उनका सम्पर्क था, स्त्रियों ने भी वहाँ उनके साथ सकोच छोड दिया था।

एक बार स्त्री, पुत्रियो सहित वे अहमदाबाद गए। वहाँ गुजराती स्त्रियां ने उनका निमन्त्रण किया। वे भूमि पर ही खाने को बैठ गए। यद्यपि गुजराती स्त्रिया खाने पीने मे बड़ा विचार करती हैं, कट्टर होती है पर उनके स्वभाव को जान कर सकोच, विचार छोड कर सब साथ खाने बैठ गई। मि० दत्त को इस बात मे बड़ा आनन्द आता था कि अन्यान्य जातियो की स्त्रियाँ एकत्र मिले और अपने को समान तथा एक ही बिचारे।

मि० दत्त को ४०००) रु० तक मासिक वेतन मिला। उच्च स उच्च पद मिला पर अभिमान या दिखावट उनके पास नाम को न फटकने पाई। उनका स्वभाव बहुत ही सरल था। निरभिमानता कूट २ कर भरो थी। दुखियो की सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। अक्सर उच्च पद पाने और विलायत आदि जाने मे लोग कुटुम्ब से पृथक् से हो जाया करते है। अपने ही स्त्री, पुत्रो से सम्बन्ध रखते है पर मि० दत्त मे यह बात न थी वे बराबर परिवार मे उसी भाति मिल कर रहते थे जैसे रहना चाहिए और बराबर सब की सहायता करते थे।

१—महात्मा महादेव गोविन्द रानाडे



सार मे प्राय समय २ पर ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते रहते है जो अपने जीवन का कृतियो से ससार के आगे आदर्श स्थापित कर जाया करते है। मनुष्य-समाज की सेवा करना, प्राणी मात्र को सुख पहुँचाना ही उनके जीवन का लक्ष्य रहता है। इसी प्रकार के पुरुपो से मनुष्य-समाज की असुविधाएँ दूर होती चली आई है।

हमारे देश के कर्मयोगी न्याय-मूर्ति, देश-हितैषी, राजनीतिज्ञ महात्मा महादेव गोविन्द रानाडे भी ऐसे ही महापुरुपो मे हुए है। रानाडे का जन्म सन् १८४२ ई० मे नासिक जिले के पास निकाई नामक ग्राम मे ब्राह्मण कुल मे हुआ था। आप के पिता अमृत राव जी वही, एक जमीदार के हेड क्लर्क थे। रानाडे की माता बडी विदुषी और सती साध्वी स्त्री थी। इसी कारण रानाडे का पालन-पोषण और सरक्षण बडे अच्छे ढग से हुआ। प्रारम्भ से ही आपके सस्कार अच्छे पडने लगे। बचपन से ही किसी प्रकार की बुराइयो का ससर्ग नही हुआ। १० वर्ष की आयु तक आप ग्राम पाठशाला मे ही देशी शिक्षा प्राप्त करते रहे। इसके पश्चात् कोल्हापुर मे आपकी अग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ हुई। ५ ६ वर्ष वहाँ पर पढ कर आप बम्बई चले गए। वहाँ 'एलिफिस्टन कालेज' मे आपने एम० ए० पास किया। आप का प्रिय विषय इतिहास था, उस मे प्रथम नम्बर होने के कारण आप को स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। उसी साल आप बम्बई विश्व-विद्यालय

के सदस्य भी चुन लिए गए। दूसरे ही साल बड़े सम्मान के साथ आपने एल० एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। रानाडे अपने शिक्षा-काल मे ही अनेक विषयो में ऐसे पार-दर्शी हो गए थे कि उनकी समानता करने वाला विश्वविद्यालय मे कोई विद्यार्थी न था।

कालेज की शिक्षा समाप्त कर रानाडे सरकारी नौकरी में प्रविष्ट हुए। शिक्षा विभाग मे मराठी भाषा के अनुवादक का कार्य आपको दिया गया। फिर कुछ दिन एक राज्य के कर्मचारी रहे। इसके बाद आप उसी 'एलफिंस्टन कालेज' मे अंग्रेजी साहित्य के प्रोफेसर नियुक्त हुए। यह पद आप के लिए बड़े महत्व का था। जिस समय कक्षा मे आप व्याख्यान देते थे उस समय कई अंग्रेज प्रोफेसर भी व्याख्यान सुनने के लिए उपस्थित हुआ करते थे।

रानाडे बड़े परिश्रमी थे, सब कार्यों मे शीघ्र तरक्की कर ले जाते थे। कानून अच्छा जानने के कारण आपकी इच्छा हुई कि इस का भी उपयोग किया जाय। आपने प्रोफेसरी छोड दी, वकालत करने लगे और शीघ्र ही बम्बई हाईकोर्ट के रिपोर्टर हो गए। यही नही, इस के बाद सबार्डिनेट जज, प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, स्पेशल जज, आदि पदो को शोभित करते हुए भारतीयो के सर्वोच्च पद हाई कोर्ट के जज नियुक्त हुए।

रानाडे ने जिन पदो पर कार्य किया, बडी योग्यता और बुद्धिमानी से किया। गवर्नमेंट सदैव आपके कार्यों से अत्यन्त प्रसन्न रही और आपका आदर करती रही। जहाँ आपने गवर्नमेंट के कार्यो को योग्यता के साथ निबाहा वहाँ जाति-हित और देश-हित के भी अनेक कार्य किए और आदर्श उपस्थित किया। जहाँ कोई देश-कार्य आ पड़ता, आप पूरी तरह

से उस म योग देते। अच्छे और हितकर कार्यों मे पीछे हटना तो आप जानते ही न थे। भय आप के पास होकर न निकला था। प्राथना समाज के मुख्य सदस्य, बम्बई सार्वजनिक सभा के अगुआ, जाति-सुधारक सभा के प्रधान मन्त्री, विश्वविद्यालय सिनेट के सभासद, आदि बनकर अनेक सभा सस्थाओ मे आप बराबर कार्य किया करते थे।

रानाड महोदय उन नरपुगवो मे थे जो कहते कम है करते अधिक है। देश की स्थिति किस प्रकार सुधरे, जाति-हित किस प्रकार हो, किस प्रकार देश की कगाली दूर हो, आदि बातो का अहर्निश चिन्तन और उनके दूर करने का उपाय हो रानाडे के जावन का मुख्य उद्देश्य था। आपकी अद्भुत शक्ति-शालिनी लखनी और अमूल्य समय हमेशा परोपकार और देश की भलाई के लिए तयार रहते थे। आप इस प्रकार के कार्यों मे ही अपना जीवन धन्य समझते और कमाए हुए धन का सदुपयोग करते थे। जीवन के अन्त तक आप अपने उद्देश्य मे तत्पर रहे।

जिस बात को रानाडे अच्छी समझते उसे किसी के सामने कहने मे कभी न हिचकते थे। आपका मत था कि देश की सभी कुरीतियाँ जब तक दूर न की जायगी, उन्नति न होगी। मनुष्य का चरित्र-बल तभी बढता है जब कुरीतियाँ दूर हो जाती हैं। और जब तक सामाजिक सुधार न हो जावे स्वराज्य-स्वत्वो की उच्चाभिलाषा करना व्यर्थ है। समाज सुधार के विषय मे जो मुख्य बात आप पेश करते थे वह यह थी कि "हमे धार्मिक सुधार की आवश्यकता है और वह विदेशी ढग पर सगठित नही हो सकती। हमारे पूर्व-पुरुषाओ ने जो मार्ग दिखलाया है वही हमारे लिए श्रेय है। भारतीय सिद्धान्तों से पृथक् होकर चलना किसी प्रकार कल्याण-कारक नही।"

सामाजिक जीवन मे विधवा स्त्रियो की दयनीय दशा देखकर आप के रोगटे खडे हो जाते थे। आपका खुल्लमखुल्ला प्रयत्न और प्रस्ताव था कि विधवा-विवाह का प्रचार और वृद्ध-विवाह तथा बाल-विवाह की रोक की जाय। विधवाओ की दशा सुधारने के लिए स्त्री-शिक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। जब तक माताएँ ही सुशिक्षिता न होगी, पुत्र शिक्षित होगे कहाँ से ?

छुआछूत के आप बडे विरुद्ध थे, कहते थे—यह भिन्नता तो प्राचीन काल से ही नही पाई जाती है। सब वर्ण परस्पर एक सा व्यवहार करते थे। यदि हिन्दू जाति की ये बुराइयाँ शीघ्र दूर न हुई तो इसे बहुत धक्का लगेगा। हम को प्रयत्न करना चाहिए कि सब बुराइया शीघ्र दूर हो। इनसे हमारी बड़ी हानि हो रही है।

भारत की आर्थिक अवस्था के विषय मे आपका कहना था कि "हमारे देश का व्यवसाय, वाणिज्य, शिल्प, कारीगरी, आदि बिलकुल नष्ट होती जा रही है स्वतत्र व्यवसाय बिलकुल नष्ट होते जा रहे है। उन्हे फिर जब तक हम नही अपनाते—आर्थिक समस्या हल नही हो सकती। राजनैतिक स्वत्वो को आप सब से पीछे रखते थे। समुद्र यात्रा को दोष नही समझते थे। देश की उन्नति के लिए उसे आवश्यक समझते थे।

भारत की कृषि के सुधार की ओर आपका विशेष ध्यान था। भूमि पर लगाए गए सरकारी कडे नियमो का आप बडा विरोध करते थे और कृषि-उन्नति मे उन्हे बाधक समझते थे। आपका कहना था कि नियमानुसार सरकार को भूमि-कर तो ले लेना चाहिए पर जमीन किसान से न बदली न छीनी जानी चाहिए, वह उसी के पास रहे।

रानाडे प्राचीनता के बहुत पक्षपाती थे। भारत-सुधार मे

आप प्रत्येक बात प्राचीन ढग से ही चाहते थे। कहते थे—'उससे ही हमारा और हमारे देश का उद्धार हो सकता है"।

आपने अपने जीवन क अन्त समय तक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति के लिए अनवरत प्रयत्न और परिश्रम किया धन दिया, लेख लिखे, बडी बडी सभाओं मे व्याख्यान दिए।

महात्मा रानाडे हिन्दुओ की ही नही, भारत मे रहने वाली प्रत्येक जाति की उन्नति चाहत थे और चाहते थे कि सब मिल जुल कर रहे। आप बडे निरभिमानी और सीधे स्वभाव के थे, अपने को हमेशा सब से छोटा समझा करते थे, दीन दुखियो के प्रति आपको बडी दया थी। वेशभूषा की सजावट से आपको विशष घृणा थी। आप हमेशा देशी ही पोशाक पहिनते थे। जज होने पर भी पैदल ही चलते थे। समय के तो इतने पाबन्द थे कि आपको जाते देख कर लोग यह कहते थे कि अब इतना बजा है। आप मे अपने नाम की लिप्सा छू तक न गई थी। आप अपने विचारो के बडे पक्के थे, विघ्न बाधाओ से जरा भी न घबडाते थे। आपका व्यवहार घर बाहर सर्वत्र समान था। माननीय गोखले रानाडे को अपना राजनैतिक गुरू मानते थे। सचमुच रानाडे अपने समय के एक आदर्श महा पुरुष थे।

दुःख है कि भारत के दुर्भाग्य से ६९ वर्ष की आयु मे ही भारतवासियो को अपार दुःख समुद्र मे छोड आप सदा के लिए ससार से चले गए।

रानाडे के जीवन की कितनी ही घटनाएँ है जिनसे हमको बहुत शिक्षा मिलती है।

एक बार आप पैदल कचहरी को जा रहे थे कि रास्ते मे लकडी का बोझा रक्खे हुए एक बुढिया मिली। उसने आपको

देखते ही कहा—" भगवान तुम्हारा भला करे, जरा इस बोझ को सिर पर रखवा दो "। आपने फौरन बोझ उठा कर उसके सिरपर रख दिया और चल दिए। उस दृश्य के देखने वाले रास्तागीर उनकी निरभिमानिता देख कर चकित रह गए। जब बुढिया को मालूम हुआ कि यह तो यहाँ का सब से बडा जज था तो वह बहुत विस्मित और लज्जित हुई।

एक बार रानाडे की माता ने आपको एक छोटा एक बडा दो बर्फी के टुकडे दिए और कहा—"ले, बडा तू खा ले और छोटा उस कहारी के लडके को दे दे।" रानाडे ने फौरन ही छोटा टुकडा अपने मुँह मे रख कर बडा टुकडा उस लडके को दे दिया। माता यह देखकर बोली—" ऐ, तू ने यह क्या किया, तुझे तो मैने बडा टुकडा दिया था, तूने उसे क्या दे दिया ? " सरल स्वभाव बालक रानाडे ने कहा—"माँ, तू ने ही तो कहा था कि छोटा टुकडा तू खा ले बडा टुकडा उस लडके को दे दे। मै ने वैसा ही किया।" माता यह सुनकर गद्गद् हो गई और बालक को छाती से लिपटा लिया।

एक बार रानाडे जब कोल्हापुर मे जज होकर गए तो पुराना घनिष्ट परिचय होने के कारण बहुत से लोग अपनी पैरवी के लिए- रानाडे के पिता के पास आया करते थे पर वे अक्सर टाल देते थे क्यो कि पिता को पुत्र का निस्पृह, न्याय-प्रिय स्वभाव मालूम था। एक दिन ऐसा मौका आ ही पडा। प्रतिवादी एक कुलीन घराने का प्रतिष्ठित व्यक्ति जो रानाडे का परिचित ही नही रिश्ते-दार भी था उनके पिता के पास आया और बोला—"मुझे आपसे कहने मे बडा सकोच है पर सकट आ पडा है अत प्रार्थना है कि महादेव से कह दे—" मेरे कागजात व एकबार देख ले क्योकि उन्ही की अदालत मे मुक़द्दमा है। " पिता लाचार होकर उसकी

प्राथना स्वीकार करते हुए उसे रानाडे के कमरे मे लिवा गए और बोले—"इन्हे कुछ कहना है सुन लो।" रानाडे को कुछ उत्तर न देते देख वह बोला—"मै अभी कागजात नही लाया। जरा उन्हे ले आऊँ" यह कहते हुए उठ कर चला गया। जब पिता जी भी उठकर चलने लगे तो रानाडे ने खडे होकर नम्रता पूर्वक कहा—"कोल्हापुर मे तो सभी आपके परिचित है। आप कहाँ तक न्याय के प्रतिकूल पैरवी करेंगे इससे तो मै कर्तव्य-विमुख हो जाऊँगा या मजबूरन यहाँ से बदली करानी होगी।"

इसी से इन्हे कहते है 'न्याय-मूर्ति रानाडे'।

एक वार पत्नी सहित रानाडे देश का भ्रमण करते हुए कलकत्ते पहुँचे। वहाँ अपने बॅगले मे बैठे पत्नी से बातचीत कर रहे थे कि एक बँगला-अखबार बेचने वाले ने आकर कहा—"कृपा कर इस पत्र के ग्राहक हो जाइए।'

पत्नी ने कहा—"भाई हम ने तो यह भाषा पढी नहीं, अखबार लेकर क्या करेंगे।" वह मनुष्य न माना, हठ करता गया, बोला—"बन ही जाइए।" तब रानाडे ने कहा—अच्छा आज दे जाओ, अब कल न आकर अगले सोमवार को आना।" वह अखबार देकर चला गया। तब उन्होने पत्नी से कहा—"जहाँ हमे अधिक समय रहना है वहाँ वालो से कहना कि हमे तुम्हारी भाषा नही आती लज्जा की बात है।" पत्नी ने कहा—"जब हम उस देश की नही तो ऐसा कहने मे क्या लज्जा। हमे मालूम होता है तुम हमे बगला भी सिखा दोगे, अच्छी बात है। हम तयार है।" वे जानती थी कि इन्हे खुद अक्षर पहचानने के सिवा बगला नही आती, इसी से यह हँसी की।

दूसरे ही दिन रानाडे जब घूम कर लौटे तो कुछ पुस्तकें लिए हुए एक आदमी साथ था। उसे दाम दिला कर रानाडे ने

देखते ही कहा—" भगवान तुम्हारा भला करे, जरा इस बोझ को सिर पर रखवा दो "। आपने फौरन बोझ उठा कर उसके सिरपर रख दिया और चल दिए। उस दृश्य के देखने वाले रास्तागीर उनकी निरभिमानिता देख कर चकित रह गए। जब बुढिया को मालूम हुआ कि यह तो यहाँ का सब से बडा जज था तो वह बहुत विस्मित और लज्जित हुई।

एक बार रानाडे की माता ने आपको एक छोटा, एक बडा दो वर्फी के टुकडे दिए और कहा—"ले, बडा तू खा ले और छोटा उस कहारी के लडके को दे दे।" रानाडे ने फौरन ही छोटा टुकड़ा अपने मुँह मे रख कर बडा टुकडा उस लडके को दे दिया। माता यह देखकर बोली—" ए, तू ने यह क्या किया, तुझे तो मैंने बडा टुकडा दिया था, तूने उसे क्या दे दिया ? " सरल स्वभाव बालक रानाडे ने कहा—"माँ, तू ने ही तो कहा था कि छोटा टुकडा तू खा ले बडा टुकडा उस लडके को दे दे। मै ने वैसा ही किया।" माता यह सुनकर गद्‌गद्‌ हो गई और बालक को छाती से लिपटा लिया।

एक बार रानाडे जब कोल्हापुर मे जज होकर गए तो पुराना घनिष्ट परिचय होने के कारण बहुत से लोग अपनी पैरवी के लिए-रानाडे के पिता के पास आया करते थे पर वे अक्सर टाल देते थे क्यो कि पिता को पुत्र का निस्पृह, न्याय-प्रिय स्वभाव मालूम था। एक दिन ऐसा मौका आ ही पडा। प्रतिवादी एक कुलीन घराने का प्रतिष्ठित व्यक्ति जो रानाडे का परिचित ही नही रिश्ते-दार भी था उनके पिता के पास आया और बोला—"मुझे आपसे कहने मे बडा सकोच है पर सकट आ पडा है अत प्रार्थना है कि महादेव से कह दे—" मेरे कागज़ात व एकबार देख ले क्योकि उन्ही की अदालत मे मुक़द्दमा है। " पिता लाचार होकर उसकी

प्राथना स्वीकार करते हुए उसे रानाडे के कमरे मे लिवा गए और बोले—"इन्हे कुछ कहना है सुन लो।" रानाडे को कुछ उत्तर न देते देख वह बोला—"मै अभी कागजात नही लाया । ज़रा उन्हे ले आऊँ" यह कहते हुए उठ कर चला गया । जब पिता जी भी उठकर चलने लगे तो रानाडे ने खडे होकर नम्रता पूर्वक कहा—"कोल्हापुर मे तो सभी आपके परिचित है । आप कहाँ तक न्याय के प्रतिकूल पैरवी करेंगे इससे तो मै कर्तव्य-विमुख हो जाऊँगा या मजबूरन यहाँ से बदली करानी होगी।"

इसी से इन्हे कहते है 'न्याय-मूर्ति रानाडे'।

एक बार पत्नी सहित रानाडे देश का भ्रमण करते हुए कलकत्ते पहुँचे। वहाँ अपने बॅगले मे बैठे पत्नी से बातचीत कर रहे थे कि एक बँगला-अखबार बेचने वाले ने आकर कहा—"कृपा कर इस पत्र के ग्राहक हो जाइए।"

पत्नी ने कहा—"भाई हम ने तो यह भाषा पढी नहीं, अखबार लेकर क्या करेंगे।" वह मनुष्य न माना, हठ करता गया, बोला—"बन ही जाइए।" तब रानाडे ने कहा—अच्छा आज दे जाओ, अब कल न आकर अगले सोमवार को आना ।" वह अखबार देकर चला गया। तब उन्होने पत्नी से कहा—"जहाँ हमे अधिक समय रहना है वहाँ वालो से कहना कि हमे तुम्हारी भाषा नही आती लज्जा की बात है।" पत्नी ने कहा—"जब हम उस देश की नही तो ऐसा कहने मे क्या लज्जा। हमे मालूम होता है तुम हमे बगला भी सिखा दोगे, अच्छी बात है। हम तयार है।" वे जानती थी कि इन्हे खुद अक्षर पहचानने के सिवा बगला नही आती, इसी से यह हँसी की।

दूसरे ही दिन रानाडे जब घूम कर लौटे तो कुछ पुस्तकें लिए हुए एक आदमी साथ था। उसे दाम दिला कर रानाडे ने

विदा किया। स्त्री को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वे सब किताबें अंग्रेजी के सहारे बंगला सीखने की थी। अब तो दूसरे दिन से ही रानाडे ने खुद बंगला का अभ्यास शुरू किया, साथ ही अपनी पत्नी को भी पढाना शुरू किया केवल डेढ ही महीने मे उन्हे इतनी अच्छी बंगला पढा दी कि वे खूब पुस्तके पढने लगी। यह थी रानाडे की लगन।

एक बार दौरे मे शोलापुर के मुकाम मे आप बीमार हो गए। उसी समय हाई कोर्ट की जजी पाने का आपके पास परवाना आया जिसे आपकी स्त्री ने उन्हे न सुनाने दिया कि शायद प्रसन्नता की बात सुनकर आवेग मे तबियत ज्यादा खराब हो जाय। पर दूसरे दिन मालूम हो जाने पर भी जब उन्होने स्त्री से इस सम्बन्ध मे कोई जिक्र तक न किया तो रमाबाई को बडा आश्चर्य हुआ। वे उनके जीवन चरित्र मे लिखती है—'इन्होने बडे पद-प्राप्ति की भी बात जब मुझ से न कही तो मुझे बडा आश्चर्य हुआ और साथ ही पहले दिन के—मना करने के—अनुमान पर हँसी और लज्जा आई कि मै बडी पागल हूँ। अहर्निश साथ रहते हुए भी मैने उनके स्वभाव को न पहचाना।

एक बार बम्बई मे घोर प्लेग था। रानाडे परिवार सहित गॉव को चले गए थे। इसी समय आपके एक नौकर काशीनाथ के गिल्टी निकल आई। वह चुपचाप अस्पताल चला गया और सरिश्तेदार को एक पत्र लिख दिया—"मै बीमार हो गया हूँ, तीन चार दिन मे अच्छा हो जाऊँगा। रानाडे को यह खबर न होने पावे, नही तो वे दौडे आवेगे।" किसी तरह रानाडे की स्त्री रमाबाई को यह खबर लग ही गई। उन्होने फौरन रानाडे से कहा और आप काशीनाथ को देखने के लिए आई।

सहसा सामने देखकर, "आप यहाँ क्यो आई? अच्छा नही

किया, जल्दी यहाँ से चली जाइए" काशीनाथ ने कहा। रमाबाई ने कहा—'भाई, घबडाओ मत, डाक्टर साहब कल से आज तुम्हे अच्छा बतलाते है। वे (रानाडे) भी अभी आवेगे।" काशीनाथ जोर से हँसा और डाक्टर की ओर इस प्रकार बर्राने लगा—'देखा? मेरे गुरू ने अपनी स्त्री को प्लेग के समय मुझे देखने को भेजा है, वे भी आवेगे। कल भी आते पर उन्हे रात दिन काम से फुरसत नही मिलती। जबतक नीद नही आ जाती वे काम मे ही लगे रहते है। मै उनका रीडर हूँ, प्राइवेट सेक्रेटरी हूँ, तुमने मुझे यहाँ क्यो कैद कर रक्खा है। छोडो, जाने दो, उनके साथ मुझे काम करने दो। क्यो मेरा समय बरबाद कर रहे हो। हटो, हटो।"

१०--महात्मा श्री गोपाल कृष्ण गोखले



स्कृत के एक श्लोक का अर्थ है—राज-भक्त, प्रजा-द्रोही और प्रजा-भक्त, राज-द्रोही समझा जाता है। इस बडे समान महान विरोध के सम्कक्ष होने पर राजा और प्रजा दोनो ही का प्रिय मिलना दुर्लभ है।

स्वर्गीय महा पुरुष गोपाल कृष्ण गोखले ऐसे ही व्यक्तियो मे थे जो राजा प्रजा के लिए समान प्रिय थे। मातृ-भूमि के सच्चे पुजारी, देश के दयनीय दृश्या से दयार्द्र-हृदय, दीन असहायो के बन्धु, राष्ट्र के सेवक और सर्वस्व माननीय गोखले आज हमारे बीच मे नही है परन्तु उनकी पुण्य कृति ने उन्हे भारतीय इतिहास मे अमर कर दिया है।

सन् १८६६ ई० मे दक्षिण के कोल्हापुर प्रान्त मे एक ब्राह्मण के घराने मे आपका आविर्भाव हुआ। आपके पिता समृद्ध और सम्पन्न न होते हुए भी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गोखले बडी प्रखर बुद्धि के बालक थे। पढने लिखने मे सदैव तेज रहा करते थे। अठारह वर्ष की अवस्था मे ही आपने बी० ए० पास कर लिया। आपके पिता आदि की इच्छा इजीनियर बन कर धनो-पार्जन कराने की थी किन्तु जिसका चित्त सेवा-भाव से ओत-प्रोत है, जिसकी वृत्तियाँ किसी महान लक्ष्य को लक्षित किए हुए हैं, जिसकी क्रियाएँ आदर्श का पाठ पढाना चाहती हैं, वह केवल धन-तृष्णा मे, उसके विनष्टकारी ऐश्वर्य के भोगो मे कब फँस सकता है। वह तो किसी दूसरे ही पथ का पथिक होता है।

जगमगाते हीरे—



श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले

अस्तु, गोखले ने आजीवन पूना के प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज की सेवा का व्रत धारण करलिया। केवल ७५) रु० मासिक निर्वाह मात्र लेकर इन्होने उसमे कार्यारम्भ किया। आप अपने को उसका नौकर नही समझते थे बल्कि त्याग-मूर्त्ति होकर अपना सर्वस्व उसको अर्पित कर रक्खा था। उसके लिए घर २ भीख माग कर लाखों रुपये सग्रह किए और आपने उसे उन्नत बनाया।

गोखले अर्थ-शास्त्र, इतिहास और गणित के प्रकाण्ड पण्डित थे। कालेज मे पढाते समय इन विषया की योग्यता का जैसा परिचय आपने दिया वैसा भारतवर्ष मे तो क्या योरोप मे भी अल्प स्थानो पर ही पाया जाता होगा। आपकी विद्वता, गम्भीरता और कार्य-पटुता देख कर ही बम्बई विश्व-विद्यालय ने, केवल २७ वर्ष की अवस्था मे ही इन्हे विश्व विद्यालय का सदस्य बना लिया। जिनकी विद्वता पर भारतवासी आज भी गर्व करते है वे प्रसिद्ध विद्वान प्रिसिपल श्रीयुत पराजपे इनके ही सुयोग्य शिष्यो मे से एक है।

महामति महादेव गोविन्द रानाडे भारतीय इतिहास के उज्ज्वल रत्नो मे है। गोखले अपने को उन्ही महादेव गोविन्द रानाडे का शिष्य मानते थे। क्योकि राजनीति तथा अन्यान्य विषयो मे गोखले को उनसे बहुत सी बाते ज्ञात हुई थी।

गोखले ने आजीवन फर्गुसन कालेज की सेवा का व्रत लिया था परन्तु जैसे २ आपका सेवा-क्षेत्र बढता गया वैसे २ आपकी क्रिया-शीलता भी बढती गई। सब से पहले बम्बई प्रान्त की राजनैतिक सभा मे भाग लिया। उस समय के आपके प्रभावपूर्ण सुन्दर भाषण को सुन कर श्रीयुत मुधोलकर ने कहा था कि "ये एक दिन एक महान् व्यक्ति होगे और किसी दिन भारतवर्षीय राष्ट्र सभा के

सभापति पद को सुशोभित करेगे ।" मुधोलकर जी की भविष्यद्वाणी अक्षरश सत्य हुई। काशी मे होने वाली राष्ट्रीय महासभा के सभापति आप ही थे। सभापति की हैसियत से अपनी वक्तृता मे आपने अनेक विषयो की अच्छी आलोचना की। स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। सरकारी शासन के भिन्न २ विभागो की कडी आलोचना की। कौंसिल सुधार और भारतीयो के अधि-कारो के विषय पर जोर दिया।

धुरन्धर से धुरन्धर विद्वान भी आपसे वाद-विवाद करने की क्षमता नही रखते थे। आपके भाषण का प्रत्येक शब्द युक्ति और प्रमाण से पूर्ण होता था। विलायत मे आपके भाषणो को श्रवण करने के लिए इग्लैण्ड के बडे २ विद्वान उत्सुकता पूर्वक पधारते थे और भाषण सुन कर चकित हो जाते थे।

एक बार नहीं, कई बार आप विलायत गए थे।

वाइसराय की कौंसिल के सदस्य होने के कारण आपको कालेज छोडना पडा। कालेज छोडते समय अपूर्व दृश्य था, प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापक का मुख-मण्डल प्रकट कर रहा था कि उससे जबरन उसकी कोई अत्यन्त प्रिय वस्तु छीनी जा रही है। सन्तोष केवल यह था कि गोखले अपने आराम के लिए नहीं, प्रत्युत समस्त देश के आराम के लिए, कालेज छोड रहे थे।

आप देश के हित-चिन्तन मे सदैव प्रयत्नवान रहते थे, और साथ ही सरकार के भी प्रिय पात्र थे। सरकार ने आपको के० सी० आई० ई० की सब से बडी उपाधि से सम्मानित करना चाहा पर देश-दुर्दशा के नाते आपने उसे व्याधि समझ कर नम्रता-पूर्वक अस्वीकार कर दिया।

स्वदेश-सेवा के भावो से प्रेरित होकर म० गोखले ने एक

'भारत-सेवक-समिति' स्थापित की। हमारे देश मे सस्थाओ की कमी नहीं है, बहुत सी सस्थाए है। पर महात्मा गोखले की स्थापित 'भारत-सेवक-समिति' एक अनूठी सस्था है। इसके स्थापित करने का आपका उद्देश्य यही था कि इस मृत-प्राय देश के निवासिया के हृदय मे देश-सेवा, दुखी-सेवा, का भाव प्रवल हो जाय। कुछ तो ऐसे व्यक्ति पैदा हो जावे जो धार्मिक भाव से प्रेरित होकर भारत माता की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दे। 'भारत-सेवक-समिति' के सदस्यो के आगे मुख्य पाँच बाते रहती है—

१ अपने वचनो और व्यवहार द्वारा सर्व साधारण मे जन्म-भूमि के लिए प्रेम उत्पन्न करना। त्याग और सेवा से उसकी पूर्ति करना।

२ शिक्षा और आन्दोलन के कार्यों का सगठन करना और देश के लोकमत को बढाना।

३ सभी जातियो से प्रेम और सहयोग करना।

४ शिक्षा-कार्यों के आन्दोलनो का सहायता करना।

५ अछूतो को उठाना।

इसी प्रकार सदस्यो को प्रविष्ट होते समय सात प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती है—

१ उसके हृदय मे प्रथम स्थान देश का होगा और अपना सर्वस्व त्याग कर उसकी सेवा करेगा।

२ देश-सेवा मे अपने व्यक्तिगत लाभ की चेष्टा न करेगा।

३ विना किसी जाति अथवा धर्म का विचार किये समस्त भारतवासियो को वह अपना भाई समझेगा और सब की भलाई के काम करेगा।

४ समिति उसे तथा उसके परिवार को निर्वाह लायक जो वृत्ति दे सकेगी वह उसी मे सन्तुष्ट रहेगा। अपनी शक्ति का उपयोग धनोपार्जन मे न करेगा।

५ वह पवित्र जीवन व्यतीत करेगा।

६ वह किसी से व्यक्तिगत झगडा न करेगा।

७ समिति के उद्देश्यो का ध्यान रक्खेगा और उसके कार्य की वृद्धि करेगा। समिति के उद्देश्यो के विरुद्ध कभी कोई कार्य न करेगा।

प्रत्येक प्रान्त मे समिति की शाखाएँ है। और वे सफलता पूर्वक अपना काय कर रही है। उसके सदस्य अल्प मासिक वेतन ही लेकर कोई कृषको की अवस्था सुधारने, कोई मजदूरो की दशा सुधारने मे सलग्न रहते है, कोई शिक्षा प्रचार मे, कोई सार्वजनिक सेवा मे अपना जीवन लगा देते है।

श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आपको राजनैतिक ऋषि कहा करते थे। सन् १९०५ ई० मे भारतवासियो को शोक समुद्र मे निमग्न कर आप स्वर्ग को चले गए। गोखले ने देश-सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था—यही कारण है जो आज भी हम श्रद्धा-पूर्वक उनका गुण-गान सुनने को उत्कण्ठित रहते है। गोखले को व्यावहारिक जीवन की घटनाएँ अनुकरणीय है —

जब गोखले चौथी श्रेणी मे पढते थे तो एक दिन उनके मास्टर ने श्रेणी के कुल विद्यार्थियो को गणित के कुछ प्रश्न दिए और कहा "इन्हे कल घर से हल कर लाना" दूसरे दिन जब सवालो की कापी देखी गई तो किसी भी विद्यार्थी के सब सवाल शुद्ध न थे। गोखले को भी कापी इन्ही मे थो और इनके सब सवाल बिलकुल ठीक थे।

"गोखले, तुम बडे अच्छे लडके हो, तुम्हारे सब सवाल सही हैं, चलो पहला नम्बर लो" कहते हुए मास्टर साहब ने गोखले की बडी प्रशसा की और दूसरे लडको को बुरा भला कहा। गोखले अपनी अतथ्य विजय-प्रशसा सुन कर सिसक २ कर रोने लगे। लडको और मास्टरो को यह देख कर बडा आश्चर्य हुआ कि इनके तो सब प्रश्न ठीक है, पहला नम्बर भी मिला फिर क्यों रोते है। सत्य रहस्य किसी ने भी न समझ पाया।

मास्टर के बहुत समझाने पर भी बालक गोखले का रोना बन्द न हुआ तो उन्होंने आपको अपने पास बुलाकर छाती से लगाते हुए कहा—

"बेटा! क्यो रोते हो, तुम्हारे तो सब सवाल ठीक है तुम्हे पहला नम्बर भी मिल चुका। रोना तो इन बेशर्मों को चाहिए जिनके सवाल गलत है। चुप रहो, रोओ मत, जाओ पहला नम्बर लो, तुम तो बडे अच्छे लडके हो, रोने का क्या काम?"

अब तो गोखले बजाय चुप होने के और भी जोर २ से रोने लगे और मास्टर साहब के चरणो पर सिर रख कर बोले "मास्टर साहब! ये सब शुद्ध प्रश्न मेरे किए एक भी नही है, मै ने सब दूसरो से पूछ २ कर कर लिए है। मै प्रथम नम्बर पाने का अधिकारी नही हूँ। मै आप से झूठ बोला हूँ और झूठी प्रशसा पाई है। मै अपराधी हूँ, मुझे दण्ड दीजिए।"

सब लडके यह सुन आश्चर्य-दृष्टि से गोखले की ओर देखने लगे। मास्टर साहब तो बहुत ही प्रसन्न हुए और गोखले को गले से लगा कर दूसरे लडको की ओर देखते हुए बोले—

"बालको! देखो सचाई इसे कहते हैं।"

महात्मा गोखले इतने से ही शान्त नही हुए। अपने आप

उस अपराध का दण्ड देने के लिए सप्ताह भर आप सब लडको से पीछे बैठते रहे।

कालेज मे पढते समय गोखले महोदय ने केवल विद्योन्नति ही नही की किन्तु उनके स्वभाव मे और भी अनेको परिवर्तन हो गए। पुराने खयालो के होने के कारण आप भोजन सम्बन्धी छूतछात के विचारो को बहुत मानते थे। जब कालेज मे दूसरे विद्यार्थियो को बिना रेशमी वस्त्र पहने साधारण वस्त्रो मे भोजन करते देखते थे तो बडा आश्चर्य होता था। खुद पीताम्बर धारण कर भोजन करते थे, पर यह नियम कब तक चल सकता था। प्राय विद्यार्थियो का एक दूसरे के साथ छेड छाड करने का चञ्चल स्वभाव हुआ ही करता है। यद्यपि गोखले चञ्चल स्वभाव के नही किन्तु शान्ति प्रिय थे लेकिन जब वे भोजन करने बैठते थे तो लडके बिना छेडछाड किये न मानते थे। सिर्फ मुँह से ही छेडछाड करते हो यह बात नही। भोजन करते समय गोखले का चौका छू लेते थे। वस्त्र छू लेते थे। गोखले महोदय साथियो के इस व्यवहार से बहुत दुखी और क्रुद्ध हो जाते थे। परन्तु किसी से शिकायत न करते थे। आखिरकार अपनी उस आदत को ही छोड दिया। अन्य विद्याथियो के ही समान भोजन करने लगे। कहते है, जब कभी सामाजिक सुधार की चर्चा चलती तो गोखले जी कहा करते थे—"मै अपने कालेज के मित्रो का विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होने मुझसे यह कट्टरपन और छुआछूत का भूत छुडाया"।

खेलने मे भी गोखले का बहुत अनुराग था। जब कभी वे ताश खेलते थे और उनका साथी ठीक तौर से न खेलता था तो बडे नाराज़ हो जाते थे। जब कोई ठीक तौर से खेलता था तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहता था। बडे प्रसन्न होते

थे और कहने लग जाते थे—"ये लोग मुझे जान बूझ कर छेडते हैं क्योंकि जानते है कि मै इनकी ऊटपटॉग बातो से चिढ जाता हूँ।"

वस्तुत इसी सरल स्वभाव के कारण महात्मा गोखले पर अगणित व्यक्तियो की भक्ति और श्रद्धा हो गई थी।

जैसे उदार विचार महामना गोखले के थे वैसे ही विचार आपने अपने परिवार मे भी फैला रक्खे थे। जिस समय व इङ्गलैण्ड से बम्बई आए उस समय बम्बई मे आपका धूम धाम से स्वागत हुआ। अपार जन-समूह था। मारे भीड के—गोखले को लेने के लिए जो गाडी आई थी, अलग दूर खडी थी। म० गोखले की लडकी भी उनसे मिलने आई थी जो बहुत भीड होने के कारण अपने पिता से न मिल सकी। दूर से खडे २ चुपचाप अपने पिता का स्वागत देख रही थी और मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। उसी समय पास ही खडे एक व्यक्ति ने उस लडकी से कहा—"तुम्हारे पिता अब हमारे पिता हो गए हैं, तुम्हारे नही रहे।' छोटी लडकी ने हॅसते हुए फौरन उत्तर दिया—"इसमे मुझे कुछ भी दु ख नही है, मै अब एक पिता के बदले मे इतने भाइयो को पाऊँगी।' वह व्यक्ति तो इस उत्तर से अवाक् रह ही गया। दूसरे पास के सुनने वाले भी उस छोटी लडकी के मुख का ओर देखने लगे।

दीन दुखियो और अनाथो की सेवा करने मे गोखले जी को बडा आनन्द मिलता था। आप उसे अपना सौभाग्य समझते थे।

एक बार पूना मे प्लेग का भयङ्कर प्रकोप हुआ। लोग घर-वालो तक को छोड २ कर भाग गए। दयार्द्र हृदय गोखले ने २४-२४ घंटे रात दिन रोगियो की सेवा-शुश्रूषा की। आपकी अपूर्व सेवा को देख कर तत्कालीन लाट ने कहा था—"प्लेग के

दिनो मे जहाॅ बाप बेटा तक एक दूसरे को बीमारी की दशा मे छोड कर भाग जाते हैं, ऐसे वक्त मे गोखले ने विकट साहस का परिचय दिया है। छोटे २ मकानो मे घुस कर प्लेग पीडितो के पास पहुॅच कर उनकी सेवा-शुश्रूषा करना अपूर्व साहसी व्यक्ति का ही काम है।" आपकी ऐसी त्यागमय सेवाओ को देखकर कट्टर विरोधी भी शान्त होकर प्रशसा करने लगते थे।

जिस समय गोखले जी फर्ग्युसन कालेज से विदा हुए—आपको अभिनन्दन पत्र दिया गया तो विद्यार्थियो और कर्मचारियो की आॅखे डबडबा आई। गोखल जी ने अपने भाषण मे एक कहानी सुनाते हुए कहा—"यद्यपि इस समय मै कालेज मे हू, मेरे साथी, जिनके साथ कार्य करने का मुझे गौरव प्राप्त है वे इतने उदार हैं कि मेरे दोषो को भी कुछ नही समझते। मेरी न कुछ सेवा को भी बहुत मानते है। तथापि मै सार्वजनिक जीवन के तूफानी और अनिश्चित समुद्र पार जाने की ठान रहा हूँ। मुझे अपने हृदय से इस पथ के अनुसरण करने की प्रेरणा हो रही है। मे कवल कर्त्तव्यवश देश-सेवा के लिए इस मार्ग का अवलम्बन कर रहा हूॅ। इस देश मे सार्वजनिक जीवन मे पुरस्कार बहुत कम हे। हाँ, अनेक निराशाएॅ और कठिनाइयाॅ बहुत है।"

म० गोखले का ध्यान अछूत जातियो के उठाने की ओर सदैव रहता था। एकबार व्याख्यान देते हुए आपने अछूत जातियो की वर्त्तमान दशा पर अत्यन्त दुःख प्रकट किया था। कहा था—"हम कुत्ते बिल्ली आदि चाहे जिस जानवर को छू लेते हैं। उन्हे गोद मे उठा लेते है। हम मे कितने ही ऐसे होते हैं जो उन्हे चूमने तक मे नही हिचकिचाते, इसमे कुछ भी परहेज या पाप नही समझते हैं, पर अछूतो को दुरदुराते है। छू जाने तक मे पाप समझते है। यह कितने दुःख की बात है।" आपने

दर्शाया कि अछूत जातियो को उठाये बिना कभी राष्ट्र-निर्माण हो ही नहीं सकता।

महात्मा गोखले की मृत्यु पर भारत-निवासियो को तो बेहद दु ख हुआ ही था , बडे लाट ने खेद प्रकट करते हुए कहा था—

उन्होने सचाई, चमत्कारिणी योग्यता और विचित्र वक्तृत्त्व शक्ति से हिन्दुस्तानिया मे एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था। वे राजभक्त थे पर चापलूस न थे, सरकारी कार्यों की निडर होकर आलोचना करते थे और उनके विरोधियो का उनके सामने ठहरना मुश्किल हो जाता था। दक्षिण अफ्रीका के जटिल प्रश्न की मीमासा उन्ही की राजनीतिज्ञता और बुद्धिमत्ता से हुई थी।

महात्मा गोखले का हृदय दीन दुखियो के प्रति कठोर वर्त्ताव होते देख कर दया से पिघल जाता था। आपने जब देखा कि भारतवर्ष के मजदूरो को विदेशो मे भॉति भॉति के कष्ट दिए जाते है तब उन्होने कौसिल मे यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि विदेशो मे यहॉ से मजदूर न भेजे जावे। दक्षिण अफ्रीका मे भारतवासियो को जो काले रग के कारण बुरे भाव से देखा जाता था उसे दूर करने के लिए दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह सग्राम के समय आपने बडा भारी प्रयत्न किया। भारत के कोने २ मे दिन रात घूम कर हजारो रुपया अफ्रीकावासी हिन्दुस्तानियो के सहायतार्थ इकट्ठा किया और भेजा। जब तक वहॉ की समस्या हल न हो गई आप जुटे ही रहे।

महात्मा गोखले की प्रबल इच्छा थी कि भारतवर्ष मे शिक्षा का खूब प्रचार हो। यहॉ का बच्चा २ शिक्षा प्राप्त करे। कौसिल मे उनके जो व्याख्यान होते थे उनमे प्राय आप यह कहा करते थे कि सेनादि के अनावश्यक बिलो को घटा कर शिक्षादि जो प्रजा के कार्य हैं, उनमे खर्च करना चाहिए।

आपने अपनी अकाट्य युक्तियो से सिद्ध कर दिखलाया कि भारतवर्ष मे प्राथमिक मुफ्त शिक्षा का अनिवार्य होना अत्यन्त आवश्यक है। इस देश मे अज्ञानता का प्रचण्ड राज्य है साथ ही यहाँ इतनी दरिद्रता भी बढी हुई है कि अनेक व्यक्ति धनाभाव के कारण अपने बच्चो को शिक्षा नही दे सकते।

महात्मा गोखले एक अद्भुत प्रभावशाली वक्ता और आन्दोलक थे। सन् १९०५ मे जब आप इग्लैण्ड गये तो राजनैतिक आन्दोलन की धूम मचा दी। व्याख्यान देने शुरू किए। पचास दिन मे पैंतालीस व्याख्यान दिए। कितने ही लेख लिखे। पत्र-सम्वाद-दाताओ से मिलने पर प्रश्नोत्तर किये और पार्लियामेट के मेम्बरो से मिल कर भारत के दु ख की कथा सुनाते रहे। इससे उनके अथक परिश्रम का अनुमान किया जा सकता है।

महात्मा गोखले सच्चे साधु और सन्यासी थे। वे भगवे वस्त्र नही पहनते थे। कमण्डल और चिमटा नही बाँधते थे। पर सन्यास का जो लक्षण त्याग है वह उनमे कूट कूट कर भरा था।

एक बार आप कही जा रहे थे कि रास्त मे आपको एक बुढिया मिली जो जानती थी कि यह गोखले है। उसने इनसे पूछा—"क्यो भाई आप इतने बडे और परिवार वाले आदमी होकर सिर्फ ७५) रु० मासिक से अपना खर्च किस प्रकार चलाते है ? " इस पर गो ले जी ने कितना बढिया उत्तर दिया जो प्रत्येक पुरुष को हर समय याद रखना चहिए और उस पर मनन करते रहना चाहिए। आपने कहा—" मुझे आश्चर्य है कि आप इस प्रकार का प्रश्न करती है। देश मे ऐसे कितने ही पुरुष है जिनको दिन मे दो बार पूरा भोजन भी नही मिलता है। मै तो समझता हूँ यह मेरा खर्च बहुत ज्यादा है।" बुढिया यह सुन कर लज्जित और

चुप हो गई । ये थे महात्मा गोखले के उच्च भाव और उनका अपूर्व त्याग ।

महात्मा गोखले अपनी प्रशसा से बडी घृणा करते थे। एक बार मि० सी० एफ्० एण्ड्रयूज ने अपने विचारो मे म० गोखले को भारत का एक मात्र उपयुक्त नेता प्रगट किया। म० गोखले को भी उक्त विचार पढने को मिले । इसके बाद जब म० गोखले मि० एन्ड्रयूज से मिले तो एकान्त मे ले जाकर एन्ड्रयूज से कहा—" मै इसे अधिक पसन्द करूगा कि आप मेरे लिए नेता शब्द न प्रयुक्त किया करे । मै अभी नेता बनने के योग्य नही हूँ। 'नेता' शब्द आप दादा भाई नौरोजी, ला० तिलक, सर फ़ीरोज़शाह मेहता, आदि के ही लिए प्रयोग किया करें । उन्होंने मातृभूमि की सेवा करके नेतृत्त्व प्राप्त किया है, मैने अभी नही किया "।

११--ऋषि-कल्प श्री दादाभाई नौरोजी



षिकल्प, पूज्य पितामह दादाभाई नौरोजी वर्त्तमान भारतवर्ष के कर्णधार, स्वराज्य सृष्टि के विधाता और देश तथा जाति के गौरव थे। उनका निर्मल पवित्र चरित्र विरले ही किसी लिखे-पढे व्यक्ति को न ज्ञात होगा। सचमुच उनका पवित्र चरित्र हमारे लिए जीवन-पथ-प्रदर्शक है।

माननीय दादाभाई नौरोजी का जन्म सन् १८२५ ई० मे बम्बई मे एक प्रसिद्ध पारसी पुरोहित के घर मे हुआ। नौरोजी को अपने पिता जी की शिक्षा-दीक्षा और पालन-पोषण का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। जन्म के चार वर्ष बाद ही आपके पिता स्वर्ग सिधार गये थे। माता आपकी बहुत कम पढी लिखी और साधारण स्त्री थी, लेकिन थी बडी बुद्धिमती। अपने ही ऊपर पूर्ण भार आ पडने पर पुत्र के शिक्षण आदि का बहुत उत्तम प्रबन्ध किया।

बम्बई नगर मे उस समय शिक्षा का अधिक प्रबन्ध न था। जो कुछ भी था, माता ने उसी के अनुसार बालक नौरोजी को शिक्षा दिलवाने का यत्न किया। इस कार्य मे नौरोजी को अपने मामा से पूरी सहायता मिली। आप की बुद्धि तीव्र थी ही, एल्फिन्स्टन कालेज मे भर्ती हुए और मन लगा कर पढना प्रारम्भ किया। आप अपनी कक्षा मे हमेशा सब विद्यार्थियो मे अव्वल रहे। कई बार अच्छे २ पारितोषिक प्राप्त किए। अध्यापक वर्ग व

जगमगाते हीरे



ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजी

सहपाठी आप से सदैव बहुत प्रसन्न रहते थे और आपकी बुद्धि की हमेशा तारीफ किया करते थे।

कुशाग्र-बुद्धि नौरोजी ने २० वर्ष की अवस्था मे ही अपनी पढाई समाप्त कर दी और तीन चार वर्ष बाद 'रास्तगुफ़्तार' नामक पत्र निकाल कर लोक-सेवा का परिचय दिया। फिर २-३ वर्ष बाद आप एलिफन्स्टन कालेज मे ही गणित जैसे गभीर विषय के मुख्य अध्यापक हो गए। देश-हित-चिन्ता तो आपको व्यग्र किए ही थी, वह चैन कहाँ लेने देती थी। अध्यापकी के साथ साथ आपने समाजोपयोगिनी सस्थाओ का जन्म देना प्रारभ किया। कन्या पाठशाला, बम्बई एसोसिएशन, पुनर्विवाह सभा, साहित्य और विज्ञान सभा, पारसी व्यायाम गृह, ईरानी फड आदि अनेक सस्थाओं को स्थापना की। आपके अदम्य उत्साह, अथक परिश्रम, अद्भुत दृढता और देश-हित की उत्कट अभिलाषा को देख कर लोग चकित होते थे।

आप कभी उत्साह भङ्ग होना तो जानते ही न थे। एकनिष्ठ देश-सेवा-व्रत आपके जीवन का लक्ष्य था। आप केवल वक्ता न थे किन्तु अपने रचनात्मक कार्य के द्वारा बडे २ युवको को लज्जित करते थे और उन्हे कर्त्तव्य-पथ मे अग्रसर कर देते थे।

निराशा राक्षसी अपने दाँत सदैव आप पर गडाए रहती थी पर आप साहस-पूर्वक उसका सामना करते थे। बार २ उसे उलटे मुँहकी खानी पडती थी। एक बार आपने अति सन्तप्त होकर कहा था —

"समय समय पर जैसा मुझे इस पथ-भ्रष्टा दुष्टा निराशा का सामना करना पडता है यदि वैसा ही किसी दूसरे को करना पडता तो निश्चय यह उसका हृदय टूक टूक कर देती।"

माननीय दादा भाई जी अपने जीवन काल मे पाँच बार विलायत गए। प्रथम बार ही लन्दन मे जाकर जब आपको मालूम हुआ कि भारतवर्ष के कर्त्ता-हर्त्ता और विधाता इन श्वेताङ्गो को भारत सम्बन्धी ज्ञान बहुत कम है, तो इस कमी को पूरा करने के लिए और भारत का सच्चा ज्ञान कराने के लिए आप उद्योग करने लगे। आपने वहाँ इण्डियन एसोसिएशन, ईस्ट इण्डियन एसोसिएशन, आदि सभाओ को जन्म दिया। इनमे भारत का हित चाहने वाले सभी देशी विदेशी सज्जन सम्मिलित होते थे। समिति से एक सामयिक पुस्तक प्रकाशित होती थी। बडे २ अँगरेज और हिन्दुस्तानी सज्जन भारत-सम्बन्धी आन्दोलन करने के लिए समिति मे लेख आदि पढा करते थे। दादाभाई जा समिति की ओर से सारे देश मे घूम २ कर सभाए करते और उनमे भारत के सम्बन्ध मे विद्वतापूर्ण व्याख्यान देते थे।

इस प्रकार इगलैंड के समाचार पत्रो, मासिक-पत्रिकाओ, सभाओ और भिन्न २ समितियो द्वारा उन्होने वहाँ के लोगो को भारत के विषय मे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करा दिया।

आप विलायत मे बहुत समय तक रहे। देश-सेवा के भावो से प्रेरित होकर नौरोजी ने विलायत की पार्लियामेंट का मेम्बर बनना चाहा और वहाँ जाकर इसके लिए जी जान से पूरी कोशिश की। उदार दल वालो के पक्ष का समर्थन किया पर अन्त मे उदार दल वालो की चुनाव मे हार हुई और आप भी मेम्बर न हो सके।

इससे यह न समझना चाहिए कि दादाभाई जी हारने से हिम्मत हार कर बैठ रहे या निराश होकर उद्योग छोड़ दिया। स्वदेश लौट कर यहाँ कुछ कार्य किया और फिर इगलैंड

पहुँचे। पहुँचते ही फिर जोरो से उद्योग शुरू कर दिया और अन्त मे पार्लियामेट के सदस्य होकर रहे।

आप ही पहले भारतवासी थे जिन्होने अपने अपूर्व साहस बल से बृटिश पार्लियामेट की सदस्यता प्राप्त की, और भारत-हित सम्बन्धी अनेक उपयोगी कार्य किए। सचमुच आपकी इस सफलता से भारत का सिर ऊँचा हो गया।

नौरोजी ने हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा पर विचार करने के लिए दो एक विदेशी मित्रा की सहायता से पालियामेट-कमेटी नियुक्त करवाई। उसमे आपने देश की बढती हुई दरिद्रता और कर का अधिकता के विषय मे अपना मुख्य वक्तव्य पेश करते हुए ज़ोरदार शब्दो मे भारत-सुधार की आवश्यकता प्रकट की।

आपका त्याग अपूर्व था। देश-सेवा के लिए आप अपना सर्वस्व अर्पण किए हुए थे। जब आप विलायत से लौट कर आए तो बम्बई-निवासियो ने आपका अभूतपूर्व स्वागत किया और सम्मान प्रदर्शनार्थ ३० हज़ार रुपये की थैलो आपको भेंट की। पर निस्पृहता के अवतार, त्यागमूर्ति दादाभाई जी उसे कब स्वीकार करने वाले थे। वह थैली आपने देश-हित कार्यों के लिए समर्पित कर दी।

जिस बडौदा रियासत का नाम आज समस्त देशो रियासतो मे आदर्श-रूप गिना जाता है उसका अधिक श्रेय दादाभाई नौरोजी को भी है। वहाँ का राज्य-प्रबन्ध बहुत दिनो से बिगडा हुआ था। राज्य की अनेक प्रकार का बुराइयो को दूर कर के सुप्रबन्ध की व्यवस्था करना वहाँ कठिन काम था। सरकारी रेजिडैंट नौरोजी के कार्यों से सहमत न थे। पर दादाभाई जी इन बातो की या बाधाओ की कब परवाह करनेवाले थे। आपने इन बातो को अपने कार्यों में ज़रा भी बाधक न समझा। स्वाभाविक दृढता के साथ

राज्य-प्रबन्ध का सुधार करना शुरू किया। अन्त मे दो वर्ष के भीतर ही राज्य भर मे ऐसी सुव्यवस्था कर दी कि केवल सारी प्रजा ही बहुत प्रसन्न नही हुई किन्तु भारत-मत्री ने भी आपके कार्यों से बहुत प्रसन्न होकर आपकी प्रशसा की।

आपने अपने मन्त्रित्व काल मे यह चरितार्थ कर दिखाया कि राज्योन्नति का विशेष दायित्त्व मत्री पर ही होता है।

नौरोजो मे विलक्षण सूझ थो। बम्बई कार्पोरेशन के जिस समय आप सदस्य थे उस समय आपने ही उसे लाखो की क्षति से मुक्त कराया था।

आपका आदर सर्वत्र समान था। जिस पूज्य दृष्टि से आप भारत मे देखे जाते थे उसी दृष्टि से आपको विलायत वाले भी देखते थे। विलायत के कितने ही गण्य मान्य व्यक्तियो ने आपकी मुक्त-कठ से प्रशसा की है। पार्लियामेट के सदस्य तक आपका यश गान करने से नही चूके है।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने तीन बार सभापति के उच्च आसन पर सुशोभित कर आपको सम्मानित किया और अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया। दो बार तो आप कलकत्ता काग्रेस के मनोनीत सभापति हुए, एक बार लाहौर काग्रेस के सभापति हुए। वहा आपका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। तीनों अधिवेशनो में सभापति के नाते आपने जो वक्तृताएँ दी वे केवल राष्ट्रहितैषी ही नहीं बल्कि प्रत्येक भारतवासी के पढने योग्य और मनन करने योग्य हैं। कलकत्ते की काग्रेस मे तो आपकी सारगर्भित वक्तृता ने भारतवासियो के हृदय मे अपूर्व उत्साह भर दिया था। नए जीवन का सञ्चार हो गया था।

आप के भाषण का प्रत्येक शब्द हृदय से निकला हुआ सचा उद्गार होता था। आपका कहना था कि—"एक हो जाओ,

दृढता से कार्य करो। वह हक़ प्राप्त करो जिससे लाखो आत्माए बचाई जा सके जो कि दरिद्रता अकाल और प्लेग से नष्ट हो रही हैं। जिससे उन करोडो आदमियो को पेट भर भोजन मिल सके जो भोजन बिना भूखों मर रहे हैं और जिससे भारत को ससार के सर्व-श्रेष्ठ सभ्य राष्ट्रो मे फिर वही गौरवान्वित स्थान मिल सके जो प्रचीन समय मे उसे प्राप्त था।

एक सार्वजनिक और सच्चे नेता मे जो गुण होने चाहिए वे प्राय सभी दादाभाई नौरोजी मे विद्यमान थे। अपूर्व स्वार्थ त्याग, असीम देश-भक्ति, अदम्य उत्साह, सतत उद्योग, अलौकिक आशानुगतिका, दृढता और धैर्य उनमे प्रारम्भ काल से ही थे और वे आजीवन वैसे ही रहे।

भोजन के अनन्तर दादाभाई जी थोड़ी शराब पिया करते थे। एक दिन भोजन से उठते ही आपने देखा कि घर मे शराब नहीं है। आप घर से शराब लेने चले। दूकान पर पहुँचते ही आपको इतनी लज्जा मालूम हुई कि उसी समय से केवल शराब पीना ही नही छोडा बल्कि तब से आप कभी किसी शराब की दूकान पर खडे तक न हुए।

अगरेजो के जिस स्कूल मे दादा भाई पढते थे उसमे दो अङ्गरेज अध्यापक पढाते थे एक साहित्य पढाता था दूसरा गणित सिखलाता था। दोनो मे किसी कारण अनबन हो गई। दोनो ने अपनी अपनी कक्षाओ को बॉट लिया। दादाभाई जी गणित पढाने वाले की कक्षा मे पडे। अध्यापक जी बहुत सुस्त थे, कुछ पढाते लिखाते न थे। अतएव दादाभाई नौरोजी भी अपनी कक्षा के सब विद्यार्थियो को इकट्ठा कर के खूब कहानियॉ कहा करते थे। कहानियाँ कहने मे आप बडे होशियार थे। जो कहानी कहीं पढते वही याद हो जाती थी। पूरा साल इन्होने कहानियाँ कहने में

ही बिताया। लडके आने से बडे खुश हुए और सबने आपको अपना अगुआ वना लिया।

एक बार इम्तिहान के समय लोगो ने एक रट्टी लडके को समझा कि यह सब से बाजी मार ले गया क्योकि उसने किताब खूब रट ली थी पर जबसे बाहरी प्रश्न उससे पूँछा गया तो चुप, दादाभाई जी ने उसे फौरन बतला दिया। लोग आपके उत्तर से बहुत खुश हुए और इम्तिहान का पहला इनाम नौरोजी को ही मिला।

दादाभाई नौरोजो का यह कहना है कि "मै नौकरी की खोज मे ज्यो ही पडा मुझे एक सरकारी नौकरी मिल गई। पर मेरे मार्ग मे ऐसी बाधाएँ आई कि सरकारी नौकरी करने का विचार ही छोडना पडा। मुझे बडी प्रसन्नता होती है जब मै स्मरण करता हू कि सरकारी नौकरी के फन्दे मे न फँस कर मैने अपना जीवन अपने देश-हित के कार्यों मे लगाया।"

एक पारसी सज्जन ने (जिनका दादाभाई जी से अधिक ससर्ग रहा है) लिखा है कि–दादाभाई नौरोजी का स्वभाव बहुत ही सरल और शान्त था। बातचीत मे आप के स्वभाव की सरलता टपकती थी आप बच्चे से लगा कर बूढे तक सब के साथ उत्तम और उचित व्यवहार करते थे। बच्चे के साथ बच्चे और बूढे के साथ बूढे बन जाते थे। अभिमान तो आपको छू तक नही गया था। आप जिस समय बातचीत करते थे तो सुनने वाले मुग्ध हो जाते थे। आप परिश्रम करते हुए कभी थकते ही न थे। जब किसी काम मे लग जाते थे तो बिना पूरा किए उसे छोडते ही न थे। केवल कठिन परिश्रम ही नही, वे मनोविनोद करना भी जानते थे। मित्रता के निबाहने मे दादाभाई नौरोजी के जैसा शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति रहा हो। आप मित्रता के मूल्य को अच्छी तरह समझते थे

और की गई मित्रता को अक्षुण्ण रखना आप सबसे अधिक आवश्यक समझते थे।

एक व्यक्ति को दादाभाई नौरोजी ने चार हज़ार रुपये किसी काम के लिए दिए। वह व्यक्ति रुपये खा गया। दादाभाई को कुछ भी नही दिया। लोगो ने दादाभाई जी से कहा–"आप इस पर मुकद्दमा क्यो नही चलाते"? दादाभाई जी ने हँस कर उत्तर दिया, "मुक़द्दमा चलाना ठीक नही, यदि एक मित्र अपने कर्त्तव्य से गिर गया तो क्या दूसरे मित्र का यह कत्तव्य है कि वह भी अपने कर्त्तव्य से गिर जावे? नही, कभी नही नौरोजी मै मुकद्दमा नही चलाऊँगा"। सलाह देने वाले नौरोजी के उत्तर को सुनकर अवाक् रह गए।

नौरोजी ने अपने जीवन की विशेष २ घटनाओ का उल्लेख एक पुस्तक मे किया है। उसी से हम कुछ अश उद्धृत करते हैं जिस से पता चलेगा कि उनके विचार कितने उच्च थे।

बचपन मे दादाभाई नौरोजी को जो कोई गाली देता या उनसे कोई बुरी बात कहता था तो उसे आप जवाब देते थे कि तुम्हारी बुरी बात तुम्हारे मुह मे रह जायगी, मेरा उससे कुछ भी नुकसान न होगा"।

दादाभाई को पहाडे बहुत याद थे। इसी से आप शीघ्र ही मौखिक सवालो का उत्तर बतला देते थे। जब आप अपने स्कूल मे सब लडको के साथ लाइन बाँध कर खडे होते थे और अध्यापक के किए हुए प्रश्नो का धडाधड उत्तर देते जाते तो सडक पर सुनने वाले बडे प्रसन्न होते और आपकी वाहवाही करते थे।

जब दादाभाई नौरोजी पन्द्रह बरस के थे तभी से आप मे अपने जीवन-सुधार के विचार पैदा हुए थे। आपने लिखा है कि—"एक दिन एक ख़ास स्थान पर बैठ कर मैं ने प्रतिज्ञा की कि आज

ही बिताया। लडके आने से बडे खुश हुए और सबने आपको अपना अगुआ बना लिया।

एक बार इम्तिहान के समय लोगो ने एक रद्दी लडके को समझा कि यह सब से बाजी मार ले गया क्योकि उसने किताब खूब रट ली थी पर जबसे बाहरी प्रश्न उससे पूँछा गया तो चुप, दादाभाई जी ने उसे फौरन बतला दिया। लोग आपके उत्तर से बहुत खुश हुए और इम्तिहान का पहला इनाम नौरोजी को ही मिला।

दादाभाई नौरोजी का यह कहना है कि "मै नौकरी की खोज मे ज्यो ही पडा मुझे एक सरकारी नौकरी मिल गई। पर मेरे मार्ग मे ऐसी बाधाएँ आई कि सरकारी नौकरी करने का विचार ही छोडना पडा। मुझे बडी प्रसन्नता होती है जब मै स्मरण करता हू कि सरकारी नौकरी के फन्दे मे न फँस कर मैने अपना जीवन अपने देश-हित के कार्यों मे लगाया।"

एक पारसी सज्जन ने (जिनका दादाभाई जी से अधिक ससर्ग रहा है) लिखा है कि–दादाभाई नौरोजी का स्वभाव बहुत ही सरल और शान्त था। बातचीत मे आप के स्वभाव की सरलता टपकती थी आप बच्चे से लगा कर बूढे तक सब के साथ उत्तम और उचित व्यवहार करते थे। बच्चे के साथ बच्चे और बूढे के साथ बूढे बन जाते थे। अभिमान तो आपको छू तक नही गया था। आप जिस समय बातचीत करते थे तो सुनने वाले मुग्ध हो जाते थे। आप परिश्रम करते हुए कभी थकते ही न थे। जब किसी काम मे लग जाते थे तो बिना पूरा किए उसे छोडते ही न थे। केवल कठिन परिश्रम ही नही, वे मनोविनोद करना भी जानते थे। मित्रता के निबाहने में दादाभाई नौरोजी के जैसा शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति रहा हो। आप मित्रता के मूल्य को अच्छी तरह समझते थे

और की गई मित्रता को अक्षुण्ण रखना आप सबसे अधिक आवश्यक समझते थे।

एक व्यक्ति को दादाभाई नौरोजी ने चार हज़ार रुपये किसी काम के लिए दिए। वह व्यक्ति रुपये खा गया। दादाभाई को कुछ भी नही दिया। लोगो ने दादाभाई जी से कहा—"आप इस पर मुकद्दमा क्यो नही चलाते"? दादाभाई जी ने हँस कर उत्तर दिया, "मुकद्दमा चलाना ठीक नही, यदि एक मित्र अपने कर्त्तव्य से गिर गया तो क्या दूसरे मित्र का यह कर्त्तव्य है कि वह भी अपने कर्त्तव्य से गिर जावे? नही, कभी नही नौरोजी मै मुकद्दमा नही चलाऊँगा"। सलाह देने वाले नौरोजी के उत्तर को सुनकर अवाक् रह गए।

नौरोजी ने अपने जीवन की विशेष २ घटनाओ का उल्लेख एक पुस्तक मे किया है। उसी से हम कुछ अश उद्धृत करते हैं जिस से पता चलेगा कि उनके विचार कितने उच्च थे।

बचपन मे दादाभाई नौरोजी को जो कोई गाली देता या उनसे कोई बुरी बात कहता था तो उसे आप जवाब देते थे कि तुम्हारी बुरी बात तुम्हारे मुह मे रह जायगी, मेरा उससे कुछ भी नुकसान न होगा"।

दादाभाई को पहाडे बहुत याद थे। इसी से आप शीघ्र ही मौखिक सवालो का उत्तर बतला देते थे। जब आप अपने स्कूल मे सब लडको के साथ लाइन बाँध कर खडे होते थे और अध्यापक के किए हुए प्रश्नो का धडाधड उत्तर देते जाते तो सडक पर सुनने वाले बडे प्रसन्न होते और आपकी वाहवाही करते थे।

जब दादाभाई नौरोजी पन्द्रह बरस के थे तभी से आप मे अपने जीवन-सुधार के विचार पैदा हुए थे। आपने लिखा है कि—"एक दिन एक ख़ास स्थान पर बैठ कर मै ने प्रतिज्ञा की कि आज

से कभी कोई बुरी बात मैं अपने मुँह से न निकाला करूगा। उसी समय मेरे मन मे बुरी बातो के छोडने और अच्छी बातो के ग्रहण करने का भाव भी पैदा हुआ। मै आज तक अपनी इस प्रतिज्ञा को दृढता के साथ पालन कर रहा हू"।

९२ वर्ष की अवस्था मे भारतवासियो को तीव्र-वेदना से व्यथित करते हुए भूलोक त्याग आप स्वर्ग लोक पधारे। आबाल, वृद्ध, नर नारी सभी को आप की मृत्यु से आन्तरिक दुख हुआ। वर्त्तमान भारत के आप पहले शिक्षित पुरुष थे, जिन्हो ने बारम्बार आपत्तियो का सामना करते हुए अगणित शारारिक और मानसिक कष्ट सह कर भी दीर्घ आयुष्य का भोग किया। देशहित चिन्ताओ के अतिरिक्त अन्य व्याधियाँ आजन्म आप से दूर रही। मृत्यु के समय भी स्वाभाविक जीर्ण शीर्णता के अतिरिक्त अन्य कोई रोग आपको न था। दादाभाई आज हमारे बीच मे नही हैं पर उनकी कीर्ति ने उन्हे अमर बना दिया है। भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम के इतिहास मे उनका अमिट नाम स्वर्णाक्षरो मे सब से ऊपर लिखा हुआ रहेगा।

१२--डाक्टर सर सुब्रह्मराय अय्यर



च्चे जीवन का सन्देश लानेवाली आत्माएँ सदैव इस ससार मे अमर रहती हैं। भावुक ससार के लिए आत्मा और भाव ही प्रेरक हैं। हृदय पर आदर्श का चित्र खीचने वाले ये भाव ही मानसी तत्त्व के सूक्ष्म कण हैं। पचतत्त्व का अस्तित्त्व भले ही मिट जाय पर भावो का असर अमिट है। आदर्श का सूर्य सदा ही अपने प्रकाश से ससार को प्रकाशित करता रहता है। चरित्रों को सीखने की इच्छा रखने वाली आत्माएँ ऐसी ही महानात्माओ की ओर आकर्षित हुआ करती हैं। भारतवर्ष मे कितनी ही महानात्माएँ दूसरों के लिए अपना चिर-प्रकाश फैला गई है। ऐसी ही आत्माओ में डा० सुब्रह्मण्य अय्यर का भी नाम लिया जाता है।

सर सुब्रह्मण्य अय्यर का जन्म सन् १८४२ ई० में मद्रास प्रान्त के मदुरा नामक स्थान मे हुआ था। इनके पिता श्री सुब्बा अय्यर एक ज़िले के ज़मीदार के यहाँ वकील थे। बालक सुब्रह्मण्य को पिता का सुख न बदा था, पितृ-सुख से वचित होना ही उनके लिए लिखा था। अय्यर अभी दो ही वर्ष के थे कि पिता इनका मोह छोड कर ससार से चले गए। अय्यर के पालन-पोषण का भार दु खिनी माता पर ही आपडा जो पति की मृत्यु के अनन्तर पचपन वर्ष तक जीवित रही। अय्यर के एक बडे भाई रामस्वामी अय्यर थे। पिता के मर जाने से गृहस्थी का भार रामस्वामी ने सभाला।

अय्यर पहले मदुरा की पाठशाला मे ही पढने के लिए बैठाये गये। जब वे चौदह वर्ष के थे तभी एक "न्यू जिला स्कूल' खुला जिसके अध्यापक एक अंग्रेज महाशय थे। अय्यर भी उन्हीं के पास पढने लगे। साथ ही छात्र वृत्ति भी प्राप्त की। तत्कालीन कलेक्टर इनकी चमत्कारिक बुद्धि देखकर बडे प्रसन्न हुए और बीस रुपये मासिक की एक नौकरी दे दी।

नौकरी मिल जाने से हमारे चरित-नायक ने पढना नही छोडा। पढना बराबर जारी रक्खा और बडी योग्यता के साथ २६ वर्ष की अवस्था मे बी० एल० की परीक्षा पास की। परीक्षा पास करते ही तहसीलदारी का पद मिला पर इस प्रकार की नौकरी उन्हे पसन्द न आई और उसे छोड कर वकालत करने लगे।

मदुरा मे सर सुब्रह्मण्य अय्यर ने अपनी वकालत इतनी चमकाई कि बडे २ जज और मजिस्ट्रेट वगैरह तक उनका लोहा मानने लगे और प्रशसा करने लगे।

अपनी योग्यता के कारण अय्यर जी मद्रास प्रेसीडेन्सी कौंसिल के गैर-सरकारी मेम्बर मनोनीत हुए। देश भर मे ये सबसे पहले भारतीय प्रतिनिधि थे जिन्होने कौन्सिल की मेम्बरी प्राप्त की। कौंसिल के मेम्बर होने पर भी प्रजा के भावो को सरकार तक पहुँचाने मे हिचकिचाते न थे। बडी निर्भीकता से व्यक्त करते थे सरकारी भावो को भी बराबर प्रजा के समक्ष रखते रहते थे। मि० जी० अय्यर ने लिखा था कि—"मद्रास प्रान्त मे मि० सुब्रह्मण्य अय्यर से बढ कर और कोई व्यक्ति नही है जो इतनी स्पष्टता के साथ जनता के मत को प्रगट कर सके।"

कौंसिल की मेम्बरी का अनुभव करने के पश्चात् अय्यर जी ने मि० ह्यूम और दादा भाई नौरोजी आदि का साथ दिया और कांग्रेस मे अपनी वक्तृता द्वारा भाव-पूर्ण विचार प्रगट किए।

धीरे २ अय्यर मदुरा से आकर मद्रास में रहने लगे और विशेष रूप से सार्वजनिक सेवाओं मे सलग्न हुए। वकालत करते हुए भी वे सचाई और न्याय का बडा ध्यान रखते थे। कानूनी बहस के समय उनके मुख से सच्ची बातें, सच्चे बयान, दलीलें और न्याय-गौरव की रक्षक बातें अपने आप सत्यता के उस स्थान से निकलती थीं जहा पर अय्यर ने उनको वास्तविक स्थान दे रक्खा था। अपनी सत्य-प्रियता के कारण कभी २ वे सार्वजनिक सम्मति की भी परवाह न करते थे। और सचाई प्रगट करते हुए साहस का परिचय देते थे। वे अपने दिमाग से निकले हुए सिद्धान्त और निर्णय को ही मानते थे। एक बार कुछ ऐसा ही जाति-गत भेद-भाव जोरो से फैला। एक पक्ष इनका अन्ध भक्त था, दूसरा दूसरे का। तब ये बिलकुल निष्पक्ष हो गए, न इधर के रहे न उधर के। हरेक व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक मामले मे झूठ प्रमाणित होने के डर से फिर वे निष्पक्ष बन जाते थे।

सरकारी न्यायालय तक इनकी इस गुण की प्रशसा करते थे और आदर देते थे। धीरे २ ये हाई कोर्ट के जज नियुक्त किए गए।

जजी पर नियुक्त होकर इस पद का कार्य भी अय्यर ने बड़ी कुशलता से निबाहा। प्रसिद्ध पत्र "हिन्दू" ने लिखा था—"सुब्रह्मण्य अय्यर के अतिरिक्त मद्रास प्रेसीडेन्सी मे कोई भी ऐसा भारतीय सज्जन नही है जिसपर जनता का इतना अधिक विश्वास हो या जिसने सर्व-साधारण की इतनी अधिक प्रियता प्राप्त की हो। इन्होने अपनी अमूल्य सेवाओ और तल्लीनता के स्वभाव द्वारा जनता के हृदय मे उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। कई वर्षों से यही एक सज्जन ऐसे उदाहरणस्वरूप है जो जनता और सरकार दोनो ही के विश्वास-पात्र हैं।"

अय्यर ने अपने जजी काल मे " हिन्दू " के इस कथन को अक्षरश चरितार्थ कर दिखलाया। कई ऐसे मार्के के क़ानूनी सुधार किए कि जिनसे हिन्दू जाति के, विशेष कर स्त्रियों के, हकों का विशेष हित हुआ।

सर सुब्रह्मण्य अय्यर यदि आठ मास और जजी का कार्य करते तो पॉच हज़ार साल पेंशन पाने के अधिकारी हो जाते। पर इधर कई वर्ष से ऑखे बिगड चलीं थी जिससे विवशत कमज़ोरी के कारण बीच मे ही इस्तीफा दे दिया। सरकार ने प्रसन्न होकर इन्हे सर, एल० एल० डी०, के० सी० आई० ई० आदि की उपाधियाँ दी। स्वय सम्राट् ने प्रतिष्ठित सरकारी अफसरो के साथ सुब्रह्मण्य अय्यर की गणना और सेवाओ की बहुत २ प्रशसा की। अय्यर जी ने इस्तीफा देकर अपना शेष जीवन धार्मिक और देश-सेवाओं के लिए अर्पित कर दिया। शारीरिक पवित्रता अथवा दिखाऊ स्वच्छता को ही वे धर्म न मानते थे। बल्कि उस पवित्र उद्दिष्ट मार्ग को जो नैतिक और आध्यात्मिक पवित्रता के साथ २ विश्व को सम-सहयोगिता का मत्र हृदयो मे फूँकता है, धर्म समझते थे। वे समझते थे—धर्म मनुष्य मात्र या केवल मनुष्य योनि के नीचे पशु-पक्षियो की ही अन्ध-सहयोगिता की सहायता के लिए ही नही प्रेरित करता बल्कि वह पवित्र आदर्श, वह उच्च मार्ग और आध्यात्मिक भाव जो प्राणी मात्र के उचित कल्याण के लिए, उचित सेवा के लिए पूर्ण अधिकारी है, प्रेरित करता है। लौकिक जीवन का परित्याग कर स्वार्थ को बलि देकर धर्म के इस प्रकार का झोला टाग लेना कोई खेल नही है।

सर सुब्रह्मण्य अय्यर ने धीरे २ अपने कार्य-क्षेत्र को बढाया। आरम्भिक सगठन मे उन्होने कट्टर हिन्दुओ मे सामाजिक और पवित्र धार्मिक भावो को फैलाने के लिए एक सभा स्थापित की। एक शुद्ध-धर्म-मण्डल पुस्तक माला प्रकाशित करवाई। उन्होने

थियोसफी मत की सस्थापिका मैडम ब्लेवस्की के ग्रन्थो का बडी गभीरता से अध्ययन किया और यह समझा कि इसकी बातें हिन्दू धर्म की विरोधी नही, इससे हिन्दू धर्म को कोई क्षति नही पहुँच सकती। और इसी से मिसेज एनी बीसेएट का समर्थन किया साथ ही सहायता भी दी। सर सुब्रह्मण्य अय्यर ने राष्ट्रीय धर्म का भी पूर्ण रीति से पालन किया। समय २ पर सरकार की अनुचित कार्रवाई का विरोध किया। राष्ट्रीय धर्म के पालन के लिए उन्होने बडी सरगर्मी के साथ कार्य किया। जिन २ सभाओ मे वे सभापति बने, समाचार-पत्रो मे जो २ लेख या पत्रादि छपाए, जिसे २ पत्र लिखे और जो जो फड जमा किए वे सब उनके राष्ट्रीय धर्म पालन की पूरी साक्षी देते हैं। अस्सी वर्ष की आयु, शरीर की कमजोरी, आँखो की क्षीणता कि हस्ताक्षर तक करना कठिन, पर अदम्य साहस और देश सेवा के प्रशसनीय कार्य, यह सुब्रह्मण्य अय्यर सरीखे महान व्यक्ति का ही कार्य था।

दूसरो की सहायता से चल फिर कर, दूसरो से (बोल २ कर) लिखवा कर नव जवान मनुष्यो की तरह परिश्रम करना, सैकड़ो आए पत्रो का सुनना, उनका उत्तर लिखवाना, आन्दोलन का क्रम निर्धारित करना, देश मे आन्दोलन के लिए भिन्न २ सभा समितियो को अपनी सम्मतियाँ व आदेश भेजवाना, सुब्रह्मण्य अय्यर का ही कार्य था। होमरूल लीग के समय पन्द्रह दिन मे आन्दोलन करके मद्रास प्रेसीडेन्सी मे रूपान्तर कर दिया। सरकार की ज़रा भी परवाह न करके फल ईश्वर के लिए छोड कर अपने मानव कर्त्तव्य का निष्काम पालन किया। सिखा दिया कि मरते समय तक अपने धर्म-प्रेम और देश-प्रेम को छोड़ना कायरता ही नहीं, पाप है।

जिस समय मिसेज एनीबीसेंट सरकार द्वारा नज़रबन्द की

गई तो अय्यर जी को दुख हुआ और विचित्र जोश पैदा हुआ। मिस्टर हेचनर के हाथ एक पत्र अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को भेजा जिसमे—कांग्रेस का जिक्र करते हुए उसे भारत की मुख्य सस्था बतलाया जिस पर भारत के तीस करोड जनता से अधिक का विश्वास है। और जिसका बृटिश की छत्र छाया में स्वराज्य प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य है। इसके पश्चात् भारतवर्ष ने युद्ध मे बृटेन को किस प्रकार सहायता की और उन्हीं लोगा ने भारतीय सेनाओ की कैसी २ प्रशसा की इसका कुछ दिग्दर्शन कराया और अन्त मे भारत की बृटेन के प्रति निराशा का दृश्य खीचते हुए बृटिश शासन की खराबी और जुल्मो का जिक्र करते हुए लिखा था—"प्रतिष्ठित महोदय, हिन्दुस्तान का जखमी हृदय आपका ओर देख कर उसासें भर रहा है क्योकि हमे विश्वास है कि ससार की स्वाधीनता के पुन सगठन मे आप ईश्वर के साधन है"। इस पत्र से अमेरिका मे ही नही योरोप भर मे बड़ी हलचल मच गई। विल्सन ने अपनी राष्ट्रसभा के ५३३ मेम्बरो के पास यह पत्र भेजा। अमेरिका के १५०० समाचार पत्रो मे यह पत्र छापा गया और दो करोड से अधिक पाठको ने इसे पढा। साथ ही अमेरिका के बडे २ नेताओ ने भारत के स्वराज्य के प्रति अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रगट की। जैसा कि लिखा जा चुका है—सुब्रह्मण्य अय्यर के पत्र ने अमेरिका मे ही नही बृटिश शासक-वर्ग मे भी खूब हलचल मचा दी। उस पत्र का दोष भिन्न २ मति के अनुसार भिन्न २ व्यक्तियो पर रक्खा गया और भिन्न २ परिणाम सोचे व निश्चित किए गए। किसी ने उस पत्र-वाहक मि० हेचनर को दोषी बतलाया। किसी ने सर अय्यर पर भाति २ के अनुमान करके उन्हे दोषी बनाया। किसी ने बतलाया कि मि० एनी बीसेंट

को नजरबन्दी से छुडाने ही के लिए यह पत्र लिखा गया। किसी ने मि० बोसेंट पर फबतियाँ कसी तो किसी ने पत्र का परिणाम भारत के लिए अहितकर बतलाया। इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं कि इस पत्र की ख़ासी चर्चा हुई, ज़ोरो की चर्चा हुई। इतनी चर्चा हुई जितनी का सर अय्यर को स्वप्न मे भी ख्याल न था। यह बात दूसरी है कि पत्र की बाते उलटी समझी जावे और पत्र का कोई २ अश दूसरे ही अर्थो मे प्रयुक्त किया जावे, परन्तु यह निश्चित है कि उक्त पत्र का प्रभाव भारत के लिए हितकर ही पडा, अहित कर नही।

सर अय्यर पर क्या प्रभाव पडा, सो भी सुनिए—मि० माटेगु के साथ जब लार्ड चेम्सफोर्ड भारतवर्ष के मद्रास प्रेसीडेन्सी मे पहुँचे तो सर सुब्रह्मण्य अय्यर भी उनसे भेंट करने गए। जैसे ही सर अय्यर ने कमरे मे पैर रक्खा, लार्ड चेम्सफोर्ड के मिजाज तन गए। सर सुब्रह्मण्य इधर कई दिनो से शारीरिक कष्ट मे थे फिर चार २ सस्थाओ के मेमारेंडम, जो भारत मत्री को दिए गए थे ठीक ठाक करने मे लगे रहने के कारण और भी अधिक कमजोर हो गए थे।

आप सोचिए एक आखो से कमजोर फिर बीमारी से उठे हुए वृद्ध आदमी के लिए यह सब कठिन परिश्रम करना कितना कठिन और साहस का काम है। कुरसी पर बैठते ही चेम्सफोर्ड अय्यर से बडी तेजी के साथ बात चीत करने लगे। इधर सर सुब्रह्मण्य अय्यर को भी कम गरमी नही आई। उनका तो कहना था कि—"यह एक तूफानी बातचीत थी। दोनों व्यक्ति खूब जोर शोर से बातचीत करने लगे। चेम्सफोर्ड ने छूटते मुह यही कहा—"सर सुब्रह्मण्य, तुम वर्षों से हाई कोर्ट के जज रह चुके हो भला क्या यह भी नहीं समझते कि इस प्रकार का पत्र लिखना

क्या विद्रोह नही है ?' सर सुब्रह्मण्य ने उसी तेजी के साथ फौरन उत्तर दिया—"नही, मै तो नही समझता कि ऐसा करना विद्रोह है, मै तो समझता हूँ वह उचित है"। इस बात चीत के बाद परस्पर दोनो की गर्मी बढती ही चली गई। जितनी तेजी से चेम्सफोर्ड बोले, उससे कम तेजी से सर सुब्रह्मण्य अय्यर नही बोले। उन्होने समझा दिया कि मैने जो कुछ किया है वह बिलकुल न्याय-युक्त है। अन्त मे चलते समय चेम्सफोर्ड ने 'विद्रोह' शब्द के प्रयोग के लिए उनसे खेद प्रगट किया और अपना वह शब्द वापस ले लिया।

सचमुच सर सुब्रह्मण्य अय्यर का चरित्र, आदर्श चरित्र है और ऐसा चरित्र है जो प्रत्येक व्यक्ति को देश सेवा और समाज सेवा के लिए प्रेरित करता है, आगे बढाता है। उनके चरित्र से स्पष्ट हो जाता है कि उनमे कितनी निर्भीकता थी। उनके समय में वही एक व्यक्ति थे जो सरकारी नौकर रह चुकने पर भी सत्य की हत्या करना जानते ही न थे।

कर्त्तव्य-परायणता के भावो से पूर्ण, शुभेच्छुगुणयुक्त, नम्र स्वभाव तथा विवेचक स्वभाव के मि० अय्यर ने जिस २ पद पर काम किया सदा विश्वासपात्रता और योग्यता के गुणो से विजय प्राप्त की, साथ ही हृदय और मस्तिष्क से प्रजा और सरकार दोनों को हमेशा भलाई ही सोची।

उनसे हमे एक दिव्य शिक्षा यह मिलती है कि ऐसे बहुत कम वृद्ध पुरुष होते है जो नवयुवको के साथ उनके ही समान मुस्तैदी से बढ सके। खासकर ऐसे पुरुष नवयुवको के साथ बढ़ने मे अपमान ही नही समझते बल्कि बुरा समझते है। यदि साथ भी देना चाहते है तो नेता बनकर। सर सुब्रह्मण्य अय्यर कभी अपने को नेता नही समझते थे। वह अपने को उन सेवको

मे समझते थे जो सदैव यथोचित सेवाओ के लिए प्रस्तुत रहा करते हैं।

सर अय्यर के अन्तिम जीवन का प्रकाश कितना जाज्वल्यमान है यह बतलाने की आवश्यकता नही। अन्तिम समय तक की कृतियाँ ही उनके कार्य का साक्षी हैं।

दूर के ढोल सुहावने होते है। जो पास आकर काम करते हैं वही सच्चे वीर है। सर अय्यर सच्चे वीर थे। कर्त्तव्य-निष्ठ थे, त्यागी थे, निर्भीक थे, और देश प्रेम की जीती जागती मूर्ति थे। अभी बहुत दिन नही बीते, दो-ढाई बरस हुए जब दीर्घ आयु भोगकर हमारे चरित-नायक इस ससार से बिदा हुए।

——

१३--श्री स्वामी श्रद्धानन्द



मय समय पर भगवान की विशिष्ट विभूति के साथ कुछ ऐसा आत्माएँ इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ करती है जिनके जन्म ग्रहण का कारण दूसरो का उपकार करना, दूसरो को दु ख से छुडाना, और सत्योपदेश मे ही अपना सर्वस्व ही नही, प्राण तक न्यौछावर कर देना होता है। धम पर बलिदान होने वाले साधु श्रद्धानन्द ऐसे ही महापुरुषो मे से एक थे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जन्म सन् १८५६ ई० मे जिला जालन्धर के समीप तलवन नामक एक ग्राम में प्रतितिष्ठ खत्री-कुल मे हुआ था। पिता का नाम था ला० नानकचन्द्र जो। ला० नानकचन्द्र जी उस समय पुलिस मे इन्स्पेक्टर थे। इस कारण एक जगह न रह पाते थे, इधर उधर तबादला होता रहता था। इसी से स्वामी श्रद्धानन्द भी जिनका पहला नाम मुशीराम था जमकर एक जगह न रह सके। उनकी शिक्षा दीक्षा काशी बरेली आदि युक्तप्रान्त के भिन्न २ शहरो मे हुई।

बालक मुशीराम की बुद्धि प्रारम्भ से ही बहुत तीव्र थी। उनके दो और बडे भाई थे। मौलवी साहब के पढाए पाठ को वे बहुत रटते फिर भो ठीक २ न सुना पाते थे। परन्तु मुशीराम खेलते-कूदते रहने पर भी तीन चार बार सुनकर ही उसे सुना देते थे। फारसी के हरूफ लिखना उन्हे किसी मौलवी ने नहीं बतलाया था। वे स्वत ही किताब से देख देख कर लिखने लगे

थे। उनके पिता जी पक्के भक्त थे। नियम से पूजा किया करते थे। पूजा के कितने ही मन्त्र व श्लोक मुशीराम ने सुन २ कर याद कर लिए थे। इस प्रकार बिना पढाए ही उन्होने बहुत कुछ पढ लिया।

दश वर्ष की आयु मे बालक मुशीराम का यज्ञोपवीत हुआ और वे पढने के लिए पाठशाला मे बैठाए गए। बुद्धि तो तीव्र थी ही जो पाठ पढाया जाता उसे फारन याद करके सुना देते थे जिससे अध्यापक लोग उनसे सदैव बहुत प्रसन्न रहा करते थे। मुशीराम की शिक्षा एक जगह नही हुई, दो तीन वर्ष से ज्यादा कही नही रहे और इसी प्रकार एफ० ए० तक पढे।

मुशीराम जी जिस प्रकार पढने मे तीव्र थे उसी प्रकार खिलाड़ी भी अव्वल दर्जे के थे। शरीर भी परमात्मा ने अच्छा दिया था फिर पुलिस इन्स्पेक्टर के लडके, हुकूमत की राब दाब, खोल कर खर्चे की आज़ादी, कइ बाते एक साथ ऐसी थी जिससे मुशीराम प्रत्येक बात मे एकसा रहते थे। उनका कहना है कि मै जहाँ जहाँ जाता था प्राय वही वैसा ठाट-बाट बना लेता था और वैसी ही बोली सीख लेता था। बलिया मे मै हुकूमत के झकारो से मस्त होकर सिह-सरदारो की पोशाक पहिनने लग गया। शान्दार लबादा, बाकपन का तिर्छा दुपट्टा, चुस्त चूडीदार पैजामा, चमकते हुए सल्मे-सितारो से जडा हुआ जूता और छडी ये मेरे ठाट थे। भोजपुरी बोली बोलने लगा था। बनारस मे ये सब ठाट बदल गए। वहाँ मै बनारसिया बनगया। इसी तरह खेलते-कूदते किसी प्रकार एफ० ए० तक पढाई समाप्त की।"

ला० नानक चन्द्र जो उस समय बरेली मे कोतवाल थे। उन्होने यह देख कर कि मुशीराम को पुलिस की नौकरी से अरुचि है कमिश्नर से मिलकर तहसीलदारी दिलवा दी। मुशीराम

जी पहले पहल बरेली मे ही नायब-तहसीलदार की एवज़ी पर नियुक्त किए गए एक महीने बाद तहसीलदार भी छुट्टी पर गए और उन्हे स्थानापन्न नियुक्त किया गया। महीने डेढ महीने के कार्य से ही मुशीराम जी को कलेक्टर और ज्वाइएट मजिस्टेट का बर्ताव अपमान-सूचक ज्ञात होने लगा। एक दिन उसी तहसील के एक पडाव पर गोरो की फौज आकर टिकी। मुशीराम जी को रसद का प्रबन्ध करना पडा। गोरो ने बिना दाम दिए अडेवालो के अडे लिए। मुशीराम जी ने कर्नल से शिकायत की कि इस प्रकार लूटमार करना ठीक नही। दूकानदार भाग जायगे। दूकानदारो के दाम दिलवा दीजिए। कर्नल साहब उलटे बिगडने लगे और बोले "तुम गुस्ताखी करता है। क्या करेगा" कह कर ज़रा आगे बढे। मुशी राम जी के हाथ मे हन्टर था कर्नल को आगे बढता देख उसे सम्हाला। कर्नल ठिठक गया। वैसे ही वे घोडे पर चढ कर भाग आए और सब को आज्ञा दे आए कि चले आओ। आते ही तहसीलदार से रिपोर्ट की। कलेक्टर को लिख कर देने गए तो वहाँ कर्नल साहब मौजूद थे। कलेक्टर ने देखते ही क्रोधित होकर कहा—तुमने कर्नल की हतक क्यो की ? तुम्हे अपने कर्त्तव्य न पालन करने का दण्ड मिलेगा। मुन्शीराम जी ने रिपोर्ट बढाते हुए निर्भीकता-पूर्वक कहा—पहले इसे पढ लीजिए फिर न्याय कीजिए। कलेक्टर ने उन्हे समझाने की चेष्टा की कि वे कर्नल से माफी माँग ले। पर उनका चित्त तो जल रहा था, सलाम करके निकल पडे, और कमिश्नर साहब के यहाँ पहुँच कर उन्हे सब हाल सुनाया। कमिश्नर साहब ने कहा | "हम आपका तबादला दूसरो तहसील को कर दें, आप शान्त हो जावें" मुन्शीराम जो ने कहा—"बस मैं सरकारी नौकरी से भर पाया मुझे अब इससे सदा के लिए

मुक्त कर दीजिए।" अन्त को कमिश्नर की इच्छा से १५ दिन और कार्य करके सदा के लिए मुन्शीराम जी ने दासता से छुटकारा पा लिया। फिर नौकरी नही की।

अब मुन्शीराम जी यह सोच रहे थे कि मैं आगे क्या करूँ ? इधर इनके पिता भी यह सोच रहे थे कि इससे नौकरी होगी नही। ठीक तो यह होगा कि पेन्शन लेने पर मै उसे वकील बना कर अपने साथ रक्खूँ। पिता जी ने अवसर पाकर म० मुन्शीराम जी के आगे अपना प्रस्ताव रक्खा। वे तो यह चाहते ही थे, फोरन स्वीकार कर लिया। और ग्राम (तलवन) पहुँच कर जमींदारी का कुल काम सँभाल लिया। साथ ही कानूनी परीक्षा की भी तयारी करने लगे। इस समय उनका विश्वास मूर्ति-पूजा आदि से इतना हट गया था कि ईश्वर के अस्तित्त्व तक पर विश्वास न रहा था। पिता जी नास्तिक कहते थे।

उच्च विचारो के साथ २ उनमे एक जबर्दस्त दुर्गुण भी मौजूद था। पक्के शराब-सेवी और मास-भक्षी थे। दो २ बोतलें ढाल जाते थे। कई बार इसका भयङ्कर दुष्परिणाम देख चुकने पर भी यह लत न छूटती थी। एक बार तो दाम चुकाने के लिए अपनी प्रिय पत्नी का ज़ेवर बेच देना पडा। कुछ दिन को आदत छूटी पर ससर्ग ने फिर वही पूर्व रूप धारण कर लिया। खैर किसी प्रकार मुख्तारी और वकालत परीक्षा पास करके बाबू मुन्शीराम जी वकालत करने लगे। वकालत पास होने के पूर्व ही उनका आर्य्य-समाज से अनुराग हो गया। सत्यार्थ प्रकाश आदि पढ कर वे आर्य्य-समाजी और समाज के सदस्य बन गए। साथ ही दो एक घटनाएँ ऐसो घटी जिससे मद्य मास का भी सदैव के लिए दूरीकरण हो गया। मुशीराम जी अब एक नए किन्तु पवित्र जीवन के पुरुष बन गए। मुशीराम जी ने जालन्धर

मे वकालत प्रारम्भ की और वहाँ आर्यसमाज के प्रधान बनकर वैदिक धर्म प्रचार मे भाग लिया। कर्मण्य और योग्य होने के कारण वे पजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बना दिए गए। इसी समय उन्होंने "सद्धर्म प्रचारक" नामक उर्दू अखबार निकाला। जिसे फिर 'हिंदी ही राष्ट्र भाषा है' विचार कर हिंदी कर दिया। यह मुशीराम जी के ही परिश्रम का फल है कि उर्दू प्रधान पजाब मे आज हिन्दी भाषा का यह स्वरूप देख पडता है।

देश की वर्त्तमान नाशक शिक्षा प्रणाली को देखते हुए उन्हो ने सोचा कि अपना वेश, भाषा और शिक्षा के बिना देश व जाति की उन्नति होनी सभव नही। इसके लिए तो पुरानी आदर्श शिक्षा प्रणाली चाहिए जो अपने रग ढग मे स्वतत्र हो। इस प्रकार निश्चय करते ही मुशीराम जी ने वकालत छोड दी और रुपया एकत्र करने के लिए बाहर निकल पडे। ३० सहस्र रुपया एकत्र कर कुछ ही महीनो मे सन् १९०१ मे हरिद्वार के निकट कागड़ी ग्राम के पास गुरुकुल का उद्घाटन किया जो आज सारे ससार मे प्रसिद्ध है। उनके नि स्वार्थ भाव और अपूर्व त्याग ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का अनुयायी बना लिया। इस समय उसी के फलस्वरूप देश मे कितने ही गुरुकुल देख पडते हैं।

जिस समय मुशीराम जी ने गुरुकुल खोल कर उसमे तपोमय जीवन की शिक्षा देने का आयोजन किया तो लोग उनकी मखौल उड़ाने लगे और 'महात्मा महात्मा' कह कर उन्हे चिढाने लगे लेकिन ध्येय के पक्के दृढ निश्चयी मुशीराम जी मखौलो से कब घबडाने वाले थे। अत मे मुशीराम जी सत्य ही महात्मा मुशीराम हो गए। जब गुरुकुल रूपी विटप फूल फल निकला तो वे सन्यास ग्रहण कर स्वामी श्रद्धानन्द के रूप मे प्रगट हुए।

स्वामी श्रद्धानन्द का राजनैतिक जीवन तो गुरुकुल स्थापना से ही प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से सत्याग्रह आन्दोलन मे उन्होने पूरा भाग लिया और इतने सर्व प्रिय हो गए कि अमृतसर काग्रेस ने उन्हे अपनी स्वागत कारिणी समिति का प्रधान चुना।

पजाब के मार्शल ला की घटनाएँ, जलियान वाले बाग के शहीदों के स्मारक की स्थापना, कत्ले आम से बच रहने वाली विधवाओ और अनाथो की सहायता, देहली के मार्शल ला के दिनो मे मशीन गनो के सामने छाती अडा कर हिन्दू, मुसलमानो की रक्षा करना आदि ृटनाएँ उनकी देश-सेवा की अच्छी परिचायक है जिनकी मिसाल दूसरे व्यक्ति मे कम मिलती है। मुसलमानो की खास जामा मसजिद मे व्याख्यान देने का गौरव स्वामी श्रद्धानन्द को ही प्राप्त था।

अकाली सिक्खो के गुरुद्वारा आन्दोलन मे स्वामी जी छै मास के लिए जेल गए। खिलाफत आन्दोलन मे पूरा भाग लिया। अन्त मे हिन्दू जाति की प्रतिदिन की क्षीणता देख कर उन्हे मर्मान्तक पीडा हुई। उन्हो ने शुद्धि आन्दोलन उठाया जिस में अपने बिछुडे हुए भाइयो को फिर से गले लगाना सिखाया। कोहाट, मुलतान, आगरा, सहारनपुर आदि की भीषण घटनाओं से द्रवीभूत होकर उन्होने हिन्दू-सगठन का बीडा उठाया और उसी सेवा मे अपने प्राणो का उत्सर्ग करते हुए देश को देश-सेवा और जाति-सेवा का उज्ज्वल पाठ पढाया।

मुसलमान उनके हिन्दू-सगठन से इतने चिढ गए कि उन्हे मारने का निश्चय कर लिया। २३ दिसम्बर १९२६ ई० को अब्दुल रशीद नामक एक हत्यारे मुसलमान ने बीमारी की दशा में पडे हुए वृद्ध और निर्बल स्वामी पर एकान्त मे रिवाल्वर

होगा ?" आँख मल कर खोली, सामने देखा, कोई न था। हृदय काँप उठा। मेरे कमरे के दूसरी ओर किसी दूसरे घर की दीवार थी। गिलास उठा कर जो फेंका तो दीवाल से लगकर चूर २ हो गया। बोतल भी टकरा कर टुकडे २ हो गई। मैंने उठकर हाथ मुह धोया और समझ लिया कि आज से मेरा नया जन्म हुआ। उस दिन से शराब स्पर्श तक न की।"

स्वामी जी लिखते है कि—"एक बार नित्य की भॉति जब मैं घूमने गया तो एक मनुष्य के सिर पर मास का टोकरा दिखलाई दिया। टोकरा उठाने वाला बोझ के दबाव से बचने के लिए भागा जाता था और टोकरे मे भेड बकरियो की खाल उधडी हुई, बाहर लटकती हुई टागे एक भयानक घृणित दृश्य उपस्थित कर रही थी। न जाने क्यो उस दिन इस दृश्य से मेरा दिल दहल गया। मै बाल्यावस्था से मासाहारी था। फिर इस आकस्मिक करुणारस का मतलब मेरी समझ मे न आया। उस टोकरे की ओर मेरी टकटकी बँध गई और तभी दूर हुई जब टोकरा आँखो से ओझल हो गया। घर आने पर भोजन के समय जब आसन पर भोजन का थाल आया तो उसमे अन्य भोज्य पदार्थों के साथ मास का कटोरा भी था। उसे देख कर मुझे ऐसी घृणा हुई कि काँसे के कटोरे को उठा कर दीवाल पर दे मारा, वह टूक २ हो गया। मेरे साथी घबराये कि क्या हुआ। मैंने कहा "मैं मॉस का अपनी थाली मे रक्खा जाना सह नही सकता।" उसी दिन से मुझे सदैव के लिए मास से छुटकारा मिल गया।

स्वामी जी के यह सकल्प कर लेने पर कि "मै अब सरकारी नौकरी न करूँगा" स्वामी जी के पिता के एक अगरेज मित्र ने, जो पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल थे, पिता जी के सहित स्वामी जी को बुलाया (स्वामीजी पर वे प्रसन्न पहले से ही थे) और कहा—

"मैने तुम्हारे पिता से तुम्हे माग लिया है। तुम्हे १५०) से ३५०) तक के ग्रेड मे ले लूगा और चार वर्ष मे डिप्टी कलक्टर बनवा दूँगा। तुम मेरे साथ चलो" स्वामी जी ने पिता जी के सकोच से कुछ हामी तो कर दी, पर इस उधेड बुन मे लग गए कि किस प्रकार इस बन्धन से छुटकारा पाऊँ। उन्होंने सरकारी उच्च पद की जरा भी आकाक्षा न की। और नौकरी पर नही गए।

स्वामी जी मे अपूर्व आत्मबल था। उसके लिए वे सब को त्यागने के लिए तैयार रहते थे। जिस बात को सत्य मान कर ग्रहण कर लेते फिर उससे हटना तो जानते ही न थे। एक बार विद्यार्थी दशा मे जब वे पिता से आज्ञा लेकर लाहौर जाने लगे तो पिता ने उनके आर्य-समाजी भावो का विचार जान कर पूजा की सामग्री मगा कर सामने मदिर की ओर इशारा करते हुए कहा—"जाओ पुत्र ठाकुर जी को मत्था टेक कर बिदा माग लो। भगवान रामचन्द्र और हनूमान तुम्हारी रक्षा करे" स्वामीजी बडे असमजस मे पड गए। फिर कुछ रुक कर दृढता पूर्वक बोले —"मैं अपने माने हुए सिद्धान्तो के विरुद्ध कोई कार्य कैसे कर सकता हू। हॉ सासारिक व्यवहारो मे आप जो आज्ञा दे, मैं पालने को सर्वदा तयार हू।" पिता जी ने क्रोध से कहा, "क्या तुम हमारे ठाकुर जी को धातु पत्थर समझते हो?" स्वामी जी ने कहा—"हॉ, मै परमात्मा के नीचे आपको ही समझता हू, क्या आप चाहते है कि आप की सन्तान मक्कार हो?" पिता जी ने कहा—"अपनी सन्तान को मक्कार कौन चाहता है?" स्वामी जी ने कहा—"तब इन मूर्तियो के आगे झूठ-मूठ सिर झुकाना मेरे लिए मक्कारी होगी"। पिता जी ने मन के भाव मन मे ही दबा-कर कहा—"अच्छा जाओ"। स्वामी जी पिता जी को प्रणाम कर चल दिए।

स्वामी जी के उच्च और सत्य विचारो को बडे से बडे प्रलोभन न दबा सकते थे। जब स्वामी जी ने गुरुकुल खोला तो सरकार को सन्देह हुआ कि यह एक ऐसी सस्था है जहाँ के लडके राजनैतिक होगे। अस्तु उनके कार्य मे हस्तक्षेप और सहयोग करने के लिए स्वामी जी को एक लाख रुपया और वार्षिक सहायता देना चाहा। परन्तु निर्लोभ स्वामी जी ने उसे लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और बोले "मुझे ऐसे धन से धिक्कार है जो हमारी स्वतत्रता और उच्च उद्देश्यो का बाधक हो।"

लाला लाजपतराय जी ने लिखा है—"स्वामी श्रद्धानन्द ने आजीवन अपने देश, धर्म और जाति की सेवा की। जब कभी नवीन भारत का इतिहास लिखा जायगा तो उसमे स्वामी जी का पद बहुत ऊँचा रक्खा जायगा। स्वामी जी वस्तुत अपने देश और जाति के लिए ही जीते थे। भावी सन्तान उनकी पूजा किया करेगी।"

१४--पंजाब केसरी लाला लाजपत राय

ला लाजपतराय देश के उन इने-गिने नेताओ मे से एक थे, जिन के लिये भारत गौरव कर सकता है। उत्तरीय भारत के नवयुवको मे जो देश-भक्ति की लहर दिखाई देती है वह लाला जी के ही उद्योग का फल है।

लाला लाजपतराय का जन्म सन् १८६५ ई० मे लुधियाना ज़िले के जगराँव नामक छोटे से गॉव मे हुआ था। वे अग्रवाल वैश्य थे और उनके पिता लाला राधाकृष्ण जी सरकारी स्कूल मे उर्दू के शिक्षक थे। सन् १९७७ ई० मे उन पर स्वामी दयानन्द की शिक्षा का प्रभाव पड़ा और वे आर्य-समाज के साथ-साथ कांग्रेस की ओर भी झुकने लगे। लाला जी की माता बडी विदुषी और अनुभवी महिला थी एव उन्ही से लालाजी ने बचपन मे ही बहुत-सी बाते सीखी थी।

लालाजी का स्वास्थ्य बचपन से ही ठीक न था और साथ-ही साथ उन्हे आर्थिक सुभीते भी न थे। तब भी पढने में वे अपने साथियो मे सब से प्रथम रहते थे। स्कूल की आरम्भिक शिक्षा समाप्त करके वे कालेज मे दाख़िल हुए और उन्हे सरकारी छात्र वृत्ति मिलने लगी। दो वर्ष तक कालेज मे पढ कर १८ वर्ष की अवस्था से पहले ही हिसार मे वकालत शुरू कर दी।

उन्ही दिनो प्रसिद्ध समाज-सुधारक तथा आर्य-समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द जी पञ्जाब मे पहुचे। स्वामी जी के

व्याख्यान और खण्डन-मण्डन की युक्तियो का उन पर खासा प्रभाव पडा और तभी से लालाजी सार्वजनिक क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए। लालाजी अपने साथी स्वर्गीय प० गुरुदत्त और महात्मा हस-राजजी के साथ समाज-सुधार के कार्य मे लग गये। लालाजी यद्यपि आर्य-समाजी थे, परन्तु उनके लिये किसी मत या धर्म से विरोध न था—वे समस्त भारतवासियो को प्रेम की दृष्टि से देखते थे और सब के दु ख मे हाथ बँटाते थे।

वकील हो जाने के बाद उन्होने अपने पेशे मे आशातीत सफलता प्राप्त की और तीन वर्ष मे ही हिसार के वकीलो के सर्व-मान्य नेता बन गये। सन् १८९२ ई० मे लाहौर आ गये और वहाँ के चीफ-कोर्ट मे वकालत करने लगे।

लालाजी सदैव जो शिक्षा-प्रेमी रहे है। लाहौर का डी० ए० बी० कालेज उनके ही परिश्रम का फल है। उन्होने बारह वर्ष तक उसके अवैतनिक सैक्रेटरी रह कर उसकी वह उन्नति की, कि आज उसके मुकाबले का कोई दूसरा कालेज भारत भर मे नही है। इतना ही नही, वरन् आप डी० ए० वी० कालेज क अतिरिक्त अन्य शिक्षा-सस्थाओ को भी बराबर सहायता और सहयोग दिया करते थे। भारत की शिक्षा-पद्धति को उपयोगी और सर्वोच्च बनाने के उद्देश्य से वे अमेरिका गये। वहा जाकर आपने कई शिक्षा-सस्थाओ का निरीक्षण किया और वहा की बहुत सी उप-योगी बाते नोट की।

शिक्षा के सिवाय लालाजी का ध्यान देश की आर्थिक स्थिति तथा दीन-अनाथ परिवारो की ओर विशेष रूप से रहता था। आप अनाथ-बन्धु थे। वे जितना धन वकालत से कमाते थे, उस से वे बडी शान-शौकत से अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे, परन्तु विलासता तो उन्हे छू भी नही गयी थी। अपने काम-

काज से जो समय बचता, उसे वे परोपकार मे ही बिताते थे। लालाजी ने फीरोजपुर अनाथालय को स्थापित करके हिन्दू-समाज का बडा भारी उपकार किया। लालाजी उर्दू मे मेज़िनी, गेरीवाल्डी, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, और भगवान् श्री कृष्ण के जीवन चरित्र लिख कर भारतीय और विशेष कर पञ्जाब के नवयुवको मे देश भक्ति का चिरस्थायी स्रोत बहाया है और कई पत्रों का सम्पादन करके देश की बडी भारी सेवा की है।

लालाजी को सच्चा स्वदेश भक्त जान १९०५ ई० मे इडियन नेशनल काग्रेस की कमेटी ने उन्हे विलायत जा ब्रिटिश जनता को भारत के राजनीतिक कष्टो का ज्ञान कराने का काम सौपा। इस० लिये पञ्जाब के इण्डियन एसोशियेशन ने ३०००) स्वीकार किये, पर उन्होने उसमे से एक पाई भी न ली। सब धन विद्यार्थियो के लाभ के कामो मे लगाने को दे दिया और अपने पास के खर्च से विलायत गये। वहॉ पहुँच, उन्होने बडी योग्यता से ब्रिटिश जनता को दीन भारतवासियो की विपत्ति कहानी सुनायी और घूम घूमकर वहाँ वालो को भारतवासियो के दु खो का व्योरा सुनाया। वहा आपके प्रचार का अच्छा प्रभाव पड़ा।

लालाजी के प्रति कृतज्ञता के जो भाव सर्व-साधारण के हृदय क्षेत्र मे घर कर गये थे, उनके कारण चारो ओर जनता ने उनका जैसा स्वागत किया, वह बडे बडे चक्रवर्तिओ को भी नसीब न होगा। इस कथन की सत्यता, उन्ही को यथावत् जँच सकती है जिन्होने वह समय देखा है। जब देश-निकाले से छुटकारा पाने पर लालाजी किसी नगर मे गये तो उनके लाख हाथ जोड़ने पर भी बडे बडे प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने उनकी एक न सुन, उनकी गाडी के घोडे खोल स्वय गाडी खीची थी।

लालाजी के छूटने के समय काग्रेस के कार्य कर्त्ताओं मे दो

दल हो गये थे। एक एक्स्ट्रीमिस्ट अथवा गरम दल के नाम से पुकारा जाता था। परन्तु वास्तव मे लालाजी के शब्दो मे उनमे गरम नरम क कोई ऐसी बात नही थी, जिससे वे एक दूसरे के विरोधी वन, उसकी अनिष्ट चिन्तना को उद्यत होते। लालाजी ने एक विराट् सभा मे कहा था कि सच पूछिये तो मैं नही समझता, कि ये शब्द जिन दलो के लिये व्यवहृत होते हैं, वे उनके सिद्धान्तो के वास्तविक द्योतक है या नही। पर मैं स्वय तो ये नापसन्द नही करता हूँ पर यदि हमारे लिये हो न हो ये शब्द व्यवहृत ही होने है तो मैं अपने नरम दल वाले भाइयो से प्रार्थना करता हू, कि विरोधियो के हाथ के खिलौने न बने सम्भव है, कि गरम-दलवालो के कार्य के कुछ ढग उन्हे पसन्द न हो, पर एक को इसीलिए उन्हे दूसरो के हाथ सौंपना और उनकी निन्दा करना अथवा उन्हे गवर्नमेण्ट का कोप भाजन बनाना और एग्लो इण्डियनो द्वारा उनका उपहास कराना बुद्धिमानी की बात न होगी। ऐसा करने से आपस मै जन्म जन्मान्तर का विरोध पड जायेगा और हम लोग विवादो और कठिनाइयो मे फॅस जायेगे, जिनसे राष्ट्रीय कार्यों के लिये हमे जो अवकाश मिलता है, वह इन्ही झगडो मे जायगा। साथ ही मै अपने गरम दल वाले भाइयो से भी नम्रता-पूर्वक निवेदन करूगा कि वयोवृद्धो की मन्दगति और उनके वास्तविक अनुभव से अधीर न हो।"

महायुद्ध के पूर्व लालाजी अमरीका गये और उस के अन्त होने पर भारत आये। ब्रिटिश-सरकार उन्हे भारत आने की आज्ञा नहीं देती थी, किन्तु कोशिश करने के बाद उन्हे आज्ञा मिल गयी। सन् १९२० ई० सितम्बर मे वे कलकत्ते की विशेष काग्रेस के सभापति हुए और उन्ही की अध्यक्षता में असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास हुआ।

सन् १९२१ ई० के दिसम्बर मे वे क्रिमनल ला एमेंडमेंट के अनुसार गिरफ्तार हुए, किन्तु थोडे दिन बाद ही राजयक्ष्मा के रोग से पीडित होने के कारण छोड़ दिये गये।

लालाजी राष्ट्रवादी होते हुए भी हिन्दुओ के साथ होने वाले अत्याचारों के कट्टर विरोधी थे। उन्हाने हिन्दू-सगठन मे पूरा पूरा भाग लिया था। गत ३० अक्टूबर सन् १९२८ को वे साइमन-कमीशन का विरोध प्रकट करने वाले लाहौर के जलूस मे सम्मिलित हुए थे और उसमे पुलिस ने उन पर डण्डे बरसाये, जिससे उन्हे गहरी।चोट आयी। उसी चोट से उनका स्वास्थ्य दिन-प्रति दिन गिरता गया और १७ नवम्बर को सबेरे ७॥ बजे हृदय की गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गयी॥

जब भविष्य मे भारत के भविष्य इतिहास के पन्ने उल्टे जायगे तो लालाजी का नाम स्वर्णाक्षरो मे प्रथम श्रेणी के महा पुरुषो मे लिखा मिलेगा। निस्सन्देह लालाजी भारत के गौरव और मातृ-भूमि के सच्चे पुजारी थे। जिन्हो ने जरा भी उन के दिव्य जीवन पर दृष्टि डाली है, जिन के हृदय पर किञ्चित भी उनकी दिव्य ज्योति का प्रकाश पहुँचा है वे शायद उन्हे तभी भुला सकेगे जब उन का नश्वर शरीर सदा के लिए ससार से उठ जाय। उनका उभरा हुआ उन्नत ललाट, छोटा किन्तु गठीला शरीर, दीप्तिमान मुखमडल उन की महत्ता के परिचायक है।

अपनी छाती पर, थोडे दिन हुए, डन्डे की चोट खा कर उन्होने जिस सहन-शीलता और वीरता का परिचय दिया उस से न केवल लालाजी का गौरव बढा बल्कि नौकरशाही के घृणित, अनुचित कृत्य का एक और नमूना पेश हुआ। यह चोट लालाजी को नही पहुँचाई गई। पहुँचाई गई भारत के उन करोड़ो हृदयो

को, जिन के हृदय मे लालाजी का स्थान है। लालाजी की अमूल्य सेवाओ से उन के प्रति जिन के नत-मस्तक हैं, नौकरशाही के इस दुष्कृत्य से वे दिल भी दहल जायँगे जिन मे उस के प्रति किसी प्रकार का दिखावटी भाव या ऊपरी भक्ति है। पूज्य लाला जी ने अपने अपूर्व साहस का परिचय देते हुए हम को वतला दिया कि स्वतत्रता-सग्राम के लिए वीर पुरुषो की भाँति अपनी जान को हथेली पर रख कर आगे आगे चलो। पशु-बल का दमन आत्म-बल से करो।

लाला जी ६३-६४ वर्ष की आयु के होकर मरे परन्तु उत्साह और क्रिया-शीलता मे वे मृत्यु समय तक किसी पच्चीस वर्ष के नव-युवक से कम नही थे। कोई नव युवक भले ही अपनी कर्त्तव्य-शीलता से जी चुरा जाय, परन्तु लालाजी उन पुरुषो मे थे जो कर्त्तव्य पथ मे बाधाओ को शुभ शकुन और कार्य-सफलता का कारण समझते थे। उन मे त्याग की विलक्षण शक्ति थी। यदि चाहते तो वे वकालत द्वारा लाखो की सपति सचित कर लिए होते। पर नही, जो अपने को पर-दुख से दुखी और पर-सुख से सुखी मानने वाला है, जिस के हृदय मे पराधीन देश के प्रति करुणा है, दया का भाव है वह खुद ऐश्वर्य कब भोग सकता था। वह सुख की नीद कब सो सकता था। जीवन के प्रारम्भ काल ही से वकालत के साथ साथ लालाजी उसे लात मार कर सार्वजनिक सेवा में लग गये। और अपना जीवन सार्वजनिक सेवाओ को समर्पण कर दिया।

दीन दुखियो के लिए तो लालाजी के हृदय मे अकथनीय दया थी। वे उन के दुखो को देख नही सकते, बर्दाश्त नही कर सकते थे। उन के लिए वे अपना सर्वस्व समर्पण करने तक में नहीं हिचकते थे। दुखियो की करुण-कहानी सुन कर उन के नेत्रों

से आसुओ की धारा बह चलती थी। अछूतो को वे अपना चिर-संगी समझते थे। उन का हमेशा यह प्रयत्न रहता था कि अछूतों का सुधार हो, उन के प्रति वही व्यवहार किया जाय जिसे हम दूसरा से अपने प्रति चाहते है। उन मे केवल वाक्शूरता न थी। वाकशूरता से कही अधिक कर्त्तव्य-शूरता थी। अछूतो और देश-हित कामो मे उन्हो ने अपनी गाढी कमाई का लाखो रुपया दे दिया। खुद भिखारी बने रहे। हिन्दू-मुसलिम दगे के दर्दनाक किस्मे सुन कर उनकी आखो से आसुओ की धारा निकल पडती थी।

हिन्दू और हिन्दुस्तान के लिए लालाजी मे पक्की लगन थी। उस के लिए वे अपनी चित्त-वृत्ति के अनुसार कार्य करने, अपनी शक्तिया को बढाने तथा देश-हितकारियो को सुदृढ व स्थायी करने करने मे सदैव प्रयत्नवान रहते थे। निष्क्रिय तो कभी होते ही न थे। मिस मेयो ने भारत वासियो को झूठा, पातकी और महा असभ्य सिद्ध करने के लिए 'मदर इडिया' नाम की जो पुस्तक लिखी है लाला जी ने 'अनहेपी इडिया' (दुखी भारत) लिख कर उस की लम्बी खबर ली, खूब धज्जिया उडाई हैं और अकाट्य प्रमाणो द्वारा यह साबित किया है कि पराधीन देश को और भी गुलामी को जञ्जीरो मे जकडने के लिए कैसा धूर्त्ततापूर्ण आन्दोलन खडा किया गया है। पुस्तक ने न केवल भारत मे बडा तहलका मचा दिया है चारो ओर सनसनी फैली हुई है। यूरोप मे बड २ अगरेज़ यह कह रहे हैं कि मिस मेयो ने 'मदर इडिया' लिख कर बडी भूल की और हिन्दुस्तानिया को योरोप की पोल खोलने का मौका दिया। इस प्रकार की पुस्तक लिख कर लालाजी ही ने इस समय ससार के आगे भारत के गौरव की रक्षा की।

जिन्हो ने आकर्षण-शक्ति-सपन्न लाला जी की चमत्कारिक, युक्ति-पूर्ण वक्तृताए सुनी हैं, वे उन की योग्यता, अद्भुत, विचार-शक्ति, गभीरता, हार्दिक लगन, परिशीलन और प्रखर राज-नीतिज्ञता का सहज ही अनुमान और प्रमाण पा सकते हैं।

लाला जी निर्भीक, तेजस्वी एक सिंह-पुरुष थे। जिस समय उन्हे देश-निकाला हुआ, उन की निर्भीकता देखने लायक थी। इस पजाब-केशरी से गवर्नमेंट को इतना भय था कि देश-निकाले के समय जब तक लाला जी लाहौर से बन्द और स्पेशल सवारियो से माण्डले नही भेज दिये गए किसी को पता नही लगने पाया। उन्हे कोई हिन्दुस्तानी देखने को नही मिला। आस पास पिस्तौल का पहरा था। लालाजी ने केवल एक सब-इन्सपेक्टर को दूर से इस लिए सलाम किया था कि देश से बिदाई के समय एक भारत पुत्र के दर्शन हो गए थे।

लाला जी का हृदय कितना विशाल था, कितने उच्च भाव थे, भारतीय जनता पर उन का कितना प्रभाव था, उन में कितनी अक्षुण्ण कार्य-शक्ति थी, इस का पता उस लेख से चलता है, जो उन के देश-निकाले के समय एक पत्र में प्रकाशित हुआ था। वह लिखता है "देश का रोना लाला लाजपत राय के लिए नहीं है, उन्हे पराधीन पजाब से माण्डले की जेल लाख दर्जे अच्छी है। वहा उन के पीछे जासूस नही दौड़ेगे, न कोई मजिस्ट्रेट वृक्षों और पर्वतो को उन के व्याख्यान सुनने से रोकेगा। जीवन-व्यापी स्वार्थ-त्याग के ऊपर यदि कोई कलश चढ सकता था तो यही जन्म भर की कमाई। डा० ए० वी० कालेज को देने वाले कागडा के प्रचण्ड भूकम्प के समय सरकार से भी दो दिन पहले सहायता ले कर कष्टितो की रक्षा और मदद के लिए पहुँचने वाले परोपकारी जीव का यही अन्तिम दृश्य है। राजा शिवि ने कपोत

के लिए अपनी देह दी, राजा ऋतुपर्ण ने नाग के बदले गरुण को अपना मांस दिया, दधीचि ने इन्द्र को असुरों के विरुद्ध लड़ने के लिए अपनी हड्डियां दी। वीर माता पंजाब का वीर पुत्र, गरीबों का सहायक, राजनीतिक मुखिया इस से क्या उच्चतर गति पाता कि देश से सेवा के पाप में विदेश भेजा जाय। आज मद्रास के ब्राह्मण वैसे ही रोते हैं जैसे अपने बड़े भाई या मां बाप के वियोग में न रोये होंगे। आज कट्टर सनातन धर्मी भी आर्य समाजी इस वैश्य जाति के रत्न के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करता है और 'अपि न सकुले जायात्' कह कर अपने पुत्रों की ओर देखता है। आज जिन बच्चों के दूध के दांत नहीं टूटे हैं वे भी उसके दुःख में चिल्ला रहे हैं" इस से पता लगता है कि पूज्य लाला जी का असर न केवल युवा या वृद्ध पुरुषों पर ही पड़ता था। बल्कि बालकों, नहीं नहीं, पशु पक्षियों, वृक्षों और पर्वतों तक पड़ता था।

लाला जी के सिद्धान्त और मन्तव्य थे कि 'मेरा मजहब हक़-परस्ती (स्वत्व पूजा) है। मेरी मिल्लत-कौम-परस्ती है। मेरी इबादत खलक-परस्ती है। मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है। मेरी जायदाद मेरी कलम है। मेरा मन्दिर मेरा दिल है। मेरी उमंगे सदा जवान है।"

प्रत्येक भारतीय को, चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, चाहे बौद्ध हो चाहे जैन, चाहे पारसी हो चाहे सिक्ख, चाहे ईसाई हो चाहे मुसाई, लाला जी के समान अपने विचार रखना चाहिए, और देश-सेवा में स्वाराज्य प्राप्ति के लिए विघ्न बाधाओं को तृणवत् समझते हुए लगा रहना चाहिए।

लाला जी की स्वाभाविक विनम्रता, मिलनसारी और उनकी सादगी भी प्रत्येक पुरुष पर अपना असर डाले बिना नहीं रह

सकती। जो पुरुष उनसे मिलता या ज़रा देर भी बातचीत करता था वह उनका हो जाता था। स्पष्ट वक्ता और निर्भीक होते हुए भी अभिमान तो उन मे लेशमात्र को छू नही गया था। दिखावा को वे अपने पास नही फटकने देते थे। कई बार वे यूरोप गए पर वही वेश भूषा, वही सादगी, वही विनम्र स्वभाव। लाला जी ने व्याख्यानो द्वारा कार्य नही किया है। उनकी लिखी हुई पुस्तकें उनका सदैव यश गावेंगी। लाला जी का आदर्श-चरित्र और उनके कार्य प्रत्येक पुरुष के लिए न केवल हितकारी बल्कि जीवन-पद प्रदर्शक हैं। इसमे सन्देह नही कि आने वाली भविष्य सन्तानें गौरव के साथ उनकी यश गाथा भविष्य मे लिखे जाने भारत के उज्ज्वल इतिहास मे पढा करेंगी। और अपने हृदयो मे उनकी आरती उतारेंगी। ससार मे दो प्रकार के पुरुष सूर्य-मडल को भेदने वाले होने हैं। एक तो योगी परिवार दूसरा प्यारी मातृ-भूमि के लिए अपने प्राणो की बाजी लगाने वाला वीर निस्सन्देह इन दोनों मे एक पजाब-केशरी श्रद्धेय लाला लाजपत राय जी भी थे।

— —

१५—महात्मा श्री मोहन दास कर्मचन्द गांधी



सार के लिए आदर्श रखने का गौरव यदि किसी को प्राप्त है तो वह भारत जननी है। भारत जननी ने ही ऐसे २ पुत्रो को जन्म दिया है जिन्होने ससार को दयालुता, उदारता, सज्जनता और विद्वत्ता का पाठ पढाया है जिनकी महत्ता को अन्यान्य देश मान गए है और उनके सामने अपने को झुका दिया है। इस जीवनी मे हम जिस महापुरुष का जीवन अकित करना चाहते हैं वे महापुरुष है महात्मा मोहन दास कर्मचन्द गाधी। भारत के लोगो ने ही नही योरोप के बडे २ पुरुषो ने इस बात को स्वीकार कर लिया है और स्पष्ट घोषित कर दिया है कि वत्तमान युग का सर्व-श्रेष्ट महापुरुष एक केवल गाधी है।" ससार के सर्व-श्रेष्ठ पुरुष के विषय मे जो कुछ लिखा जाय बहुत थोडा है। हम यहाँ केवल उनके चरित्र का दिग्दर्शन मात्र कराते हैं।

महात्मा गाधी का जन्म सन् १८६९ के अक्टूबर मास मे बम्बई के पास पोर बन्दर नामक स्थान मे हुआ था। आप के वश मे अपने नाम के साथ पिता का भी आधा नाम जोडने की रीति है। आप के पिता का नाम था कर्मचन्द गाधी। उसी के अनुसार आपका नाम रक्खा गया मोहन दास कर्मचन्द गाधी।

बचपन से ही गाधी जी पर उनके सुयोग्य पिता और धर्म-परायणा माता का बहुत असर पडा। गाधी जी के वर्त्तमान

जगमगाते हीरे—



महात्मा गांधी

तो एक दम बडी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। वहाँ के सब थे। उनके भिन्न भिन्न पहनाव, वेश-भूषा भिन्न भिन्न रहन-सहन देख कर वे बहुत घबडाए। वहाॅ के लोग इन्हे देख २ कर हॅसते थे और विवेक-रहित समझते थे। बहुत दुखित होकर गाधी जी ने एक अपने मित्र को जो लन्दन मे ही रहते थे, तार देकर बुलाया। वे पश्चिमीय सभ्यता मे रगे, अप-टू-डेट फेशन के पूरे जैंटिलमैन थे। उन्होने आकर गाधी जी को भो उसी रग मे रगना चाहा। मास खाना, मद्य पीना, नाच रग, स्त्रियो से विशेष प्रेम ह्रेल मेल वहाॅ की सभ्यता की निशानी है प्रत्येक सभ्य मनुष्य मे जिनका होना परमावश्यक है। महात्मा जी प्रतिज्ञा-बद्ध थे दूसरे ये बाते उन्हे सुहाती भी न थी इस लिए आर बातो मे तो न फॅसे पर गाना बजाना और नाचना सीखना चाहा। कुछ विशेष रुचि तो थी नही, विदेशी गाने वे समझ भी न पाते थे अत इस कला मे भी सफल न हुए। हाँ, जैंटिलमैन बनने का शौक अभी उन्हे न छूटा था।

एक बार एक मित्र के साथ एक अगरेज़ के यहाॅ गाधी जो दावत मे गए। वहाँ भोजन मे शोरबा परसा गया। गाधी जी ने नौकर से धीरे से पूछा—' यह शोरबा मास का तो नही हैं? मित्र महाशय यह सुनकर बडे बिगडे। बोले—तुम बडे असभ्य हो सभ्य समाज मे बैठने लायक नही हो। महात्मा जी ने कहा—मैं तो सिर्फ जानना चाहता हूॅ कि यह मास का शोरबा तो नही है। क्योकि मै मास न खाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूॅ। मित्र बोले—तो यहाॅ से चले जाओ। गाधी जी फौरन उठ कर चल दिए और उसी दिन से जैंटिलमैन बनने की इच्छा त्याग दी। साथ ही नाचने गाने न जाने का भी खातमा हुआ। अपना सादा जीवन बिताने लगे। लन्दन ऐसे बडे नगर मे सिर्फ ६०) मासिक अपना

खच रक्खा और अपना तमाम समय विद्याभ्यास मे लगाया। बैरिस्टरी का ‚शिक्षा प्राप्त करने लगे। अतिरिक्त समय भी अन्यान्य पुस्तको के पठन मे ही बीतने लगा। दूसरे लोग जब आकर उनसे हिन्दू-समाज विषयक बातें पूछते तो सन्तोष-जनक उत्तर न दे सकने के कारण उन्हे बडी लज्जा मालूम होती। अतएव उन्होने हिन्दू-धर्म के ग्रन्थो का पढना प्रारम्भ किया। गीता का विशेष रूप से अध्ययन किया। इससे न केवल उन्हे धर्म-विषयक शान्ति प्राप्त हुई बल्कि उनका जीवन ही सुधर गया। गीता ने तो उन्हे अमरता का पाठ पढा दिया।

तीन वर्ष विलायत मे रह कर और बैरिस्टरी पास करके महात्मा जी स्वदेश को लौटे। पिता जी का देहान्त तो बचपन मे ही हो चुका था। इस समय माता जी भी गुजर चुकी थी। पर पढने मे विघ्न होने के भय से गाधी जी को कोई सूचना न दी गई थी। बम्बई मे उनके भाई जब उन्हे लेने आए और माता का मृत्यु का दुखद समाचार सुनाया तो निस्सन्देह मातृ-भक्त गाधी को दारुण दु ख हुआ। किसी प्रकार धैर्य धारण कर राजकोट जहाँ उनके भाई थे आए और बैरिस्टरी करने लगे। डेढ वर्ष तक कभी राजकोट कभी बम्बई मे बैरिस्टरी करते रहे।

पोर बन्दर मे किसी महाजन की एक कोठी थी जिसकी एक शाखा दक्षिण अफ्रीका मे थी। एक बार एक बडे मुकद्दमे में, जिसमे वहाँ एक वर्ष लगना था, महाजन को एक बैरिस्टर भेजने की आवश्यकता हुई। उसने महात्मा जी के भाई से महात्मा जी को भेजने की प्रार्थना की। महात्मा जी के सामने जब यह प्रस्ताव आया तो उन्होने स्वीकार कर लिया और दक्षिण अफ्रीका चल दिए।

वहाँ पहुँचने पर जब कोर्ट मे बैरिस्टरी करने की दरख्वास्त

दी तो ला-सोसाइटी वालो ने बडा विरोध किया कि काले आद-
मियो को यहाँ बैरिस्टरी करने की आज्ञा न मिलनी चाहिए यद्यपि
महात्मा जी की दरखास्त मजूर हो गई, बैरिस्टरी करने लगे पर
उन्हे बडे दुख के साथ अनुभव हुआ कि बृटिश राज्य मे भी सब
को समान अधिकार प्राप्त नहीं है। एक स्वदेशाभिमानी के लिए
यह बात खटकने वाली थी। यही नही और भी कई घटनाए
बराबर ऐसी हुई जिस से उन्होने निष्कर्ष निकाला कि दक्षिण-
अफ्रीका के भारतीयो का दशा बडी अपमानजनक और दयनीय
है। यहाँ परिवर्त्तन और आन्दोलन की आवश्यकता है।

एक बार टिकट होने पर भी फर्स्ट क्लास की रेलगाडी से एक
योरोपियन द्वारा उनका सामान फेक दिया गया और वे ठोकर
मार कर उतार दिए गए। इसी प्रकार एक बार एक घोडा गाडी
पर से घूँसे मार के उतार दिए गए। और भी कई घटनाएँ ऐसी
हुई जिनसे दूसरा आदमी घबडाकर अवश्य स्वदेश को भाग
खडा होता या शान्त होकर गुलामी का जीवन बिताता। पर
स्वदेशाभिमानी, शान्त प्रकृति गाधी घबडाना तो जानते ही न थे।
कायरता छू न गई थी। उन्होने प्रबल आन्दोलन कर भारतीयों
के कष्ट दूर करने का निश्चय किया और प्रयत्न मे जुट गए।

दक्षिण अफ्रीका मे जिस समय कारोबार बढने से सस्ते
मजदूरो की आवश्यकता हुई तो वहाँ के गोरो ने भारत पर शनि
दृष्टि फेकी। वे भारतीयो का हित तो चाहते नही थे। हाँ, अपना
स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। इस लिए भारत सरकार से आज्ञा
प्राप्त कर यहाँ से बहका २ कर लालच देकर आदमियो को ले
जाने लगे। उनसे चलते समय कहा जाता था कि तुम्हे वहाँ कोई
कष्ट न होगा, सुख से रहोगे, भरपूर मजदूरी मिलगी, सब प्रकार
की सुविधाए होगी। हाँ, पाँच वर्ष काम करने की गारटी लिख

देनी होगी इत्यादि २। जब वहाँ लोग पहुचते तो उन्हे गौराङ्गो का क्रीत दास हो जाना पडता था और अनेक यातनाए भोगनी पडती थी। किसी स शिकायत न कर सकते थे। जब पाँच वर्ष समाप्त होजाते तो किसी तरह स्वदेश लौट आने पर वहुतरे निवनता बस वही रह कर कोई स्वतत्र व्यवसाय करने लगे। इसो प्रकार कुछ लोग वहा बस गए। कुछ व्यापारी डाक्टर आदि भी पहुच गए और भारतीय थोडे मे अपना निर्वाह करते हुए अधिक परिश्रम के साथ पैसा पैदा करन लग गए। यह बात वहा वालो को कब सह्य हो सकती थी। एक तो वैसे ही भारतायो को वे असभ्य समझते थे फिर नही चाहते थे कि हमारे काम निकल जाने के बाद भी वे यहा रहे और स्वतत्र व्यवसाय कर के हम से भी अधिक धनी हो जायँ। अब तो उन लोगो ने बडे २ अत्याचार शुरू कर दिए। भारतीयो के लिए बडे २ कानून बनवाए गए। जगह २ पर गोरे काले का भेद देखा जाने लगा। प्रत्येक भारतीय पर ४५) रु० सालाना सिर्फ वहा रहने का कर बाध दिया गया। एक घर मे जितने पुरुष, स्त्री, बच्चे होते थे प्रत्येक को ४५) रु० साल देना पडता था। इस प्रकार पाशविक अत्याचारो से बडी घबडाहट पैदा हो गई।

महात्मा गाधी को एक बर्ष हो चुका था। उनका वह मुकदमा भी जिसके लिए वे आये थे समाप्त हो चुका था। अत स्वदेश लौटने को तयार थे कि उन्होने पत्रो मे पढा कि यहा कौसिल मे और भी अनेक ऐसे बिल पास होने जारहे है जिस से भारतीयो का एक प्रकार से सर्वनाश हो जायगा। उन्होने विरोध करना शुरू किया। एक सभा स्थापित की। लोग दुखित तो थे ही उनकी आवाज सुनते ही शरण मे आगये। बोले आप यहा से न जावे। यही बैरिस्टरी करे और भारतीयो का कष्ट दूर करें। महात्मा गाधी

उस समय युवक थे। थोडे समय मे स्वदेश में ही पर्याप्त धन और ख्याति प्राप्त कर सकते थे। पर वहा वालो की प्रार्थना पर भावी आशाओ को लात मार कर केवल देश भाइयो के कल्याण के लिए-ऐसे देश मे जहा पग पग पर कठिनाइयो के अपमान और आपत्तियो का सामना करना पडे केवल दुख निवारण और उन्नति के लिए त्याग-वृत्ति ग्रहण की। अपनी महत्ता का एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया। भारत आकर अपने स्त्री बच्चो को भी ले गए। और घोर आन्दोलन मचा दिया। किस प्रकार आपत्तियो का सामना करके अल्प अशिक्षित और गरीब भारतीयों को साथ लेकर असख्य शक्तिशाली महाप्रभुओ से सामना किया और विजय प्राप्त की इसका विस्तृत हाल लिखने लगें तो अलग एक मोटी पोथी बन जावे। अस्तु सक्षेप में यही कहना है कि वहाँ प्रबल सत्याग्रह करके महा प्रभुओ मे बिकट स्थिति पैदा करके वह विजय प्राप्त की जो ससार के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगी। दो बार स्वत भी जेल गए। वहा भाति भॉति के कष्ट दिये गये। परिश्रम करवाया गया। हाथो स खून निकलता था, बेतो की मार पड़ती थी पर एक महात्मा गाधी ही था जो कि न खुद ही धैर्य धरता था बल्कि दूसरो मे भी सहन-शक्ति और साहस भरता था। दक्षिण अफ्रीका की सरकार से करारा युद्ध करके अन्त मे पूरी विजय प्राप्त की और वहा के निवासी भारतीयो के दुख का सदा के लिए अन्त कर दिया। गोखले जी की अनुमति के अनुसार जिन्हे महात्मा जी ने अपना राजनैतिक गुरु माना है लग भग एक वर्ष तक भारत मे भ्रमण किया और कुछ एकान्त वास के विचार से साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) मे 'सत्याग्रह' आश्रम खोल कर कुछ विद्यार्थियो के साथ रहने लगे। इन विद्यार्थियो को प्राचीन ऋषि महात्माओ के ढग पर शिक्षा दी जाती है

और स्वावलम्बन तथा सेवा-भाव भरे जाते हैं। सत्याग्रह आश्रम में अविवाहित लडके रहते हैं। उन्हे चर्खा कातना, खेता करना और छोटे से छोटे कार्य तक अपने ही हाथ से करने पडते हैं। भोजन अत्यन्त सादा, बिना मसालो का खाना पडता है, कभी २ कच्चे पक्के फल ही खाने पडते हैं। अब महात्मा जी ने सत्याग्रह आश्रम का नाम बदल कर ' उद्योग भवन रख दिया है। बहुमत को रुचि अनुसार गृहस्थ भी अब उसमे प्रविष्ट हो सकते हैं। भोजनादि मे मसाले आदि न पडने का भी नियम तोड दिया है।

इसी एक विजय से महात्मा गाधी की कीर्ति-दुन्दुभी ससार म बज गई। जिस समय भारत को लोटे तो अभूत पूर्व स्वागत हुआ। बम्बई को एक बडी सभा मे उन्हे सोने चॉदी का हार दिया गया। उन्हाने फिर अपने अपूर्व त्याग कर परिचय देते हुए कहा— आप लोगो ने मुझे हार तो पहना दिया है, पर मै गरीब आदमी इसको रक्खूगा कहॉ ? मेरे पास तो जगह नही। कृपया आप इसे लें और किसी अच्छे कार्य मे लगा दे, यह कह कर हार उतार कर रख दिया।

सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस के बाद महात्मा जी ने बिहार का दौरा किया—इसी समय बिहार के चम्पारन जिले मे उन्हे निलहे गोरो द्वारा सताए गए भारतीय मज़दूरो की दर्दनाक कहानी सुनने को मिली। करुण हृदय पसीज उठा। चम्पारन पहुचे और गोरो को अन्तिम नोटिस दे दिया कि अब तुम्हारे अत्याचार न होने पावेंगे। घोर आन्दोलन हुआ, गोरो और महात्मा मे ठन गई पर अन्त मे वही हुआ। गोरे हारे। महात्माजी को विजय हुई। कुलियो के दुख दूर हुए। चम्पारन मे बच्चा २ महात्मा जी को अच्छी तरह जान गया। लोगो की उनमे अगाध श्रद्धा और भक्ति होगई।

इसके पश्चात् ही महात्मा जी की शान्ति भग हो गई, एकान्त वास छूट गया। स्वराज आन्दोलन के क्षेत्र मे उतर आए। खेडे के स्मरणीय सत्याग्रह क आधार-स्तम्भ महात्मा जी ही थे। पर अब तक उन्होने बृटिश और भारत सरकार के बिरुद्ध कोई कार्रवाई न की थी। पर योरोपीय युद्ध की विजय के एक मात्र कारण भारत को बचन देकर भी बृटिश सरकार ने कोई अधिकार न दिए। अगूँठा दिखाते हुए उल्टे रौलट बिल का प्रहार किया। बिलो का मतलब था कि विद्रोहात्मक कागज पत्र रखनेवाला भी दण्ड का भागो हो सकता है। राजद्रोह-दाण्डत के पास बैठने वाला भी दण्ड पा सकता है। सजा पाए लोगा से जमानत मुचलका लिया जा सकता है, पुलिस की तैनाती की जा सकती है। सजायाफ्ता कही आ जा न सकता है। सरकार द्वारा किए उसके निर्णय का कही अपील न हो सकती है, इत्यादि। इस बिल से भारत मे तहलका मचगया। समस्त नेता महात्मा जी से मिले। उन्होने समस्त प्रयत्नो के बाद रौलट ऐक्ट रद्द करने का अन्तिम अस्त्र सत्याग्रह निकाला। अब तो जगह २ सत्याग्रह सभाएँ खुल, गई, खुलेआम सरकार का विरोध होने लगा। हडताले मनाई जाने लगी। सरकार ने भी आन्दोलन दवाने के लिए अमानुषिक व्यवहारो का प्रयोग किया। पजाब मे भीषण हत्याकाण्ड मच गया। सरकार ने मार्शल-ला बोल दिया। जनता दुखित, क्रुद्ध और क्षुब्ध हो गई। देश मे उच्छृङ्खलता पैदा हो गई। फाँसी आजन्म काले पानी की सजाओ के समाचारो से पत्र भरे मिलने लगे। शान्तिप्रिय सत्याग्रही निरपराधियो से जेले भरी जाने लगी। सरकार के भीषण अत्याचारो का दौर-दौरा मच गया। इधर सत्याग्रहियो ने भी सरकार से असहयोग किया। विद्यार्थी स्कूल कालेज छोडने लगे। वकील वकालत छोड़ने लगे। विदेशी माल का बायकाट

किया गया। विदेशी माल की दूकानो, शराब की दूकानो पर धरने दिए जाने लगे। विदेशी वस्त्रो की होली जलाई जाने लगी। प्रजा को यह निश्चय हो गया कि पूर्ण स्वराज्य लेना चाहिये, अगरेज़ सरकार को भारत से बिलकुल निकाल देना चाहिये। खुलेआम मौजूदा गवर्नमेंट की बुराइयाँ होने लगी। गाधी जी ने भारत के कोने २ मे बिजली दौडा दी। उनकी आवाज़ पर देश कुर्बान होने को तयार हो गया। बडे २ विलासियो ने विलासिता का लिवास उतार कर फेंक दिया और त्याग-वृति धारण कर स्वतन्त्रता-यज्ञ मे आकर सम्मिलित हुए। नौकरशाही का शासन डगमगा उठा। महात्मा जी के अद्भुत प्रभाव से हिन्दू मुसलमान सगे भाई मालूम होने लगे। सदियो का हृदयो का मैल धुल गया। एक विचित्र नया युग पैदा होगया जिसकी चर्चा भारत ही नही समस्त ससार मे मच गई। देश के समस्त नेता एकटक होकर गान्धी जी के भृकुटि भङ्ग की प्रतीक्षा करने लगे। दुर्भाग्य से उसी समय युवराज प्रिन्स आफ वेल्स भारत आए। उनका समस्त भारत मे ऐसा बायकाट हुआ जैसा शायद ही कभी किसी का हुआ हो। प्राय जहाँ २ युवराज पहुँचे काले झडे तो निकाल ही गए। भगियो न सडको पर झाडू नहीं लगाई, स्टेशनो पर कुली नही मिले। रात मे म्यूनिस्पिल्टी ने रोशनी बन्द करवा दी। जगह २ लिख दिया गया 'युवराज का स्वागत मत करो।' इसी विराट आन्दोलन मे जहाँ सत्याग्रह होने जा रहा था वहाँ दुर्भाग्य से दो एक दुर्घटनाओ ने देश को कुछ दिन के लिए स्वराज्य से फिर वचित कर दिया। महात्मा जी की आज्ञा सविनय आज्ञा भग करने की थी। मार-काट उत्पात आदि वे बिलकुल न होने देना चाहते थे ताकि सरकार को किसी प्रकार की शिकायत का मौका न मिले। पर कुछ जल्दबाज़ों और अविवेकियो ने जोश मे आकर महात्मा जी की इच्छा के विरुद्ध

इसके पश्चात् ही महात्मा जी की शान्ति भग हो गई, एकान्त वास छूट गया। स्वराज आन्दोलन के क्षेत्र मे उतर आए। खेडे के स्मरणीय सत्याग्रह क आधार-स्तम्भ महात्मा जी ही थे। पर अब तक उन्होने बृटिश और भारत सरकार के बिरुद्ध कोई कार्रवाई न की थी। पर योरोपीय युद्ध की विजय के एक मात्र कारण भारत को बचन देकर भी बृटिश सरकार ने कोई अधिकार न दिए। अगूठा दिखाते हुए उल्टे रौलट बिल का प्रहार किया। बिलो का मत्लब था कि विद्रोहात्मक कागज पत्र रखनेवाला भी दण्ड का भागी हो सकता है। राजद्रोह-दाण्डत के पास बैठने वाला भी दण्ड पा सकता है। सजा पाए लोगो से जमानत मुच लका लिया जा सकता है, पुलिस की तैनाती की जा सकती है। सजायाफ्ता कही आ जा न सकता है। सरकार द्वारा किए उसके निर्णय का कही अपील न हो सकती है, इत्यादि। इस बिल से भारत मे तहलका मचगया। समस्त नेता महात्मा जी से मिले। उन्होने समस्त प्रयत्नो के बाद रौलट ऐक्ट रद्द करने का अन्तिम अस्त्र सत्याग्रह निकाला। अब तो जगह २ सत्याग्रह सभाएँ खुल, गई, खुलेआम सरकार का विरोध होने लगा। हडताले मनाई जाने लगी। सरकार ने भी आन्दोलन दबाने के लिए अमानुषिक व्यव हारो का प्रयोग किया। पजाब मे भीषण हत्याकाण्ड मच गया। सरकार ने मार्शल-ला बोल दिया। जनता दुखित, क्रुद्ध और क्षुब्ध हो गई। देश मे उच्छृङ्खलता पैदा हो गई। फॉसी आजन्म काले पानी की सजाओ के समाचारो से पत्र भरे मिलने लगे। शान्ति प्रिय सत्याग्रही निरपराधियो से जेले भरी जाने लगी। सरकार के भीषण अत्याचारो का दौर-दौरा मच गया। इधर सत्याग्रहियो ने भी सरकार से असहयोग किया। विद्यार्थी स्कूल कालेज छोडने लगे। वकील वकालत छोडने लगे। विदेशी माल का बायकाट

किया गया। विदेशी माल की दूकानो, शराब की दूकानो पर धरने दिए जाने लगे। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाने लगी। प्रजा को यह निश्चय हो गया कि पूर्ण स्वराज्य लेना चाहिये, अगरेज़ सरकार को भारत से बिलकुल निकाल देना चाहिये। खुलेआम मौजूदा गवर्नमेंट की बुराइयाँ होने लगी। गाधी जी ने भारत के कोने २ मे बिजली दौडा दी। उनकी आवाज़ पर देश कुर्बान होने को तयार हो गया। बडे २ विलासियो ने विलासिता का लिबास उतार कर फेंक दिया और त्याग-वृति धारण कर स्वतन्त्रता-यज्ञ मे आकर सम्मिलित हुए। नौकरशाही का शासन डगमगा उठा। महात्मा जी के अद्भुत प्रभाव से हिन्दू मुसलमान सगे भाई मालूम होने लगे। सदियो का हृदयो का मैल धुल गया। एक विचित्र नया युग पैदा होगया जिसकी चर्चा भारत ही नही समस्त ससार मे मच गई। देश के समस्त नेता एकटक होकर गान्धी जी के भृकुटि भङ्ग की प्रतीक्षा करने लगे। दुर्भाग्य से उसी समय युवराज प्रिन्स आफ वेल्स भारत आए। उनका समस्त भारत मे ऐसा बायकाट हुआ जैसा शायद ही कभी किसी का हुआ हो। प्राय जहाँ २ युवराज पहुँचे काले झडे तो निकाल ही गए। भगियो न सडको पर झाडू नही लगाई, स्टेशनो पर कुली नही मिले। रात मे म्यूनिस्पिल्टी ने रोशनी बन्द करवा दी। जगह २ लिख दिया गया 'युवराज का स्वागत मत करो।' इसी विराट आन्दोलन मे जहाँ सत्याग्रह होने जा रहा था वहाँ दुभार्ग्य से दो एक दुर्घटनाओ ने देश को कुछ दिन के लिए स्वराज्य से फिर वचित कर दिया। महात्मा जी की आज्ञा सविनय आज्ञा भग करने की थी। मार-काट उत्पात आदि वे बिलकुल न होने देना चाहते थे ताकि सरकार को किसी प्रकार की शिकायत का मौक़ा न मिले। पर कुछ जल्दबाज़ों और अविवेकियो ने जोश मे आकर महात्मा जी की इच्छा के विरुद्ध

लड़ाई दगा कर डाला। चौराचौरी मे रक्त-पात हो गया। बस महात्मा जी का दिल खिन्न हो गया और कुछ काल के लिए सत्याग्रह स्थगित हो गया। महात्मा जी को भी जेल हो गई। इस प्रकार यह भीषण आन्दोलन कुछ काल के लिए दब अवश्य गया परन्तु प्रत्येक भारतीय के हृदय से इस नौकरशाही का भय सदैव के लिए दूर हो गया। और नौकरशाही ने भी जान लिया कि अब हम भारत पर रोब से भय दिखला कर अधिक दिन शासन नही कर सकते।

महात्मा जी कुछ समय के पश्चात् जेल से मुक्त हो गये। तब से उन्होने एक मात्र खादी को भारत के स्वराज्य का मुख्य साधन बतला कर उसी के प्रचार मे अपने जीवन को लगा दिया है। आज भी उनका वही ध्येय है, वही लक्ष्य है और वही उपदेश है। वे खादी के पीछे दीवाने है, मस्त हैं और देश के सच्चे योगी, सन्यासी तथा ससार के महापुरुषो मे एक हैं।

महात्मा जी हिन्दू है पर किसी धर्म से उनका द्वेष नही। मनुष्य-मात्र से समान प्रेम है, उनका हृदय पर दु ख से दु खी और दया से पूर्ण है। ससार के ईसाई, मुसलमान, पारसी, जैन, बौद्ध सभी उन्हे सिर झुकाते है और वर्त्तमान समय का ससार का सर्व श्रेष्ठ पुरुष मानते है। कितने ही अङ्गरेज उनके शिष्य हैं। एक प्रसिद्ध धनी पाश्चात्य कप्तान की कन्या मिस स्लेड आजकल उनकी शिष्या है जो खद्दर पहनती, चर्खा कातती और महात्मा जी की सेवा मे रहती है। भिन्न २ देशो के स्त्री पुरुष प्राय केवल महात्मा जी के दर्शनो को आया करते है। महात्मा जी के सिद्धान्त दृढ है। अपने सिद्धान्तो के मानने मे वे ससार की पर्वाह नही करते। अभी हाल ही की एक घटना है कि डाक्टर वैद्यो के जवाब दे देने से एक मृत-प्राय तडपते हुए बछड़े को

ज़हर देकर मरवा दिया। इस पर तमाम भारत मे बड़ा आन्दोलन मचा। पर महात्मा जी का कहना है—"मैं उसके कष्ट को बर्दाश्त न कर सका इसी से दु ख से मुक्त कर दिया। मैं इसे हिसा नही मानता। यदि लोकमत के अनुसार मैने उसे उसके कर्मों का फल नही भोगने दिया जो अवश्य भोग्य था, तो उस फल को भोगने के लिए मै सहर्ष तयार हूँ। यदि दूसरो का कष्ट दूर कर उसका फल मै भोग सकूँ तो मुझे बड़ी खुशी है, इसमें कोई चिन्ता नही।" फिर भी सत्य बात को तुरन्त ग्रहण करते है। मनुष्य मात्र के हित के लिए वे तुच्छ से तुच्छ कार्य करने को सहर्ष तयार रहते हैं। छुआछूत वे जानते ही नहीं कि क्या चीज़ है। कठिन से कठिन परिश्रम करने को हर समय तयार रहते हैं और करते है। भगी, चमार, धोबी, किसान आदि से भी वे काम लेना पसन्द नही करते। उनके कामो को जहाँ तक होता है खुद करते है आर दूसरो के लिए भगा, चमार, आदि का कार्य करने को तयार रहत है। सैकड़ो जगह आपने कार्यां द्वारा अपने इन विचारो का सबूत दिया है।

श्रीमती गाधी के विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि वे इन सभी कार्यों मे महात्मा जी के बराबर साथ रही हैं।

महात्मा गाधी के सदृश कर्मनिष्ठ और तपस्वी इस समय ससार मे दूसरा नही है। बहुत से विद्वान् ईसाई उन्हें ईसा, हिन्दू कृष्ण का अवतार, बोलशेविक लोग लेनिन और सर्व साधारण ससार का सर्व-श्रेष्ठ पुरुष मानते हैं। महात्मा जी ने कितने ही बार उपवास किए हैं। देशहित कार्यों मे दूसरो के कृत्यो से जब २ उन्हे कष्ट होता है तो उनके प्रति रोष न प्रकट कर खुद ही उपवास आदि कर महात्मा जी ने वर्षों नमक खाना छोड़ा है। वर्षों केवल फल ही खाए हैं। वर्षों अपनी खुराक केवल

=)।। प्रति दिन रक्खी है। अब भी उनका खर्च ५-६) रु० महीने से अधिक नही होता। वस्त्रो मे केवल खद्दर का अगोछा, चादर, और कोपीन के अतिरिक्त कुछ नही रहता। इतने पर भी कार्य शील इतने है कि जमीन खोदना, मीलो पैदल चले जाना उनके प्रति-दिन के कार्य है।

महात्मा जी मन, वचन, कर्म से अहिसा-वादी है पर उनका कहना है—" कि प्राणी मात्र से प्रेम करो, किसी शरीर की कभी बुराई तक न चाहो पर किसी के अन्याय को कभी बर्दाश्त न करो उसका स्पष्ट विरोध करो, सत्याग्रह मे सदैव अपने प्राणों की बाजी लगाए रहो।"

महात्मा गाधी का व्यक्तित्व कितना बढा चढा है इसके विषय मे ससार के कुछ प्रसिद्ध पुरुषो की राय देना अनुचित न होगा। गोपाल कृष्ण गोखले का कहना था—" निस्सन्देह महात्मा गाधी उन्ही तत्त्वो से बने है जिन तत्त्वो से बडे २ बहादुर और शहीद बनते है बल्कि वे अपने विलक्षण आत्म-बल से साधारण पुरुषो को भी बहादुर व शहीद बना देते है।"

मद्रास के लार्ड बिशप ने कहा था—" मि० गाधी ईसा मसीह के कही अधिक सच्चे प्रतिनिधि है।"

सर फीरोजशाह मेहता का कहना था—" हम भारतवासियो में जब तक गाधी सरीखे महापुरुष है तब तक हम लोगो को देश के विषय मे निराश न होना चाहिये।"

मि० एच्० एस्० एल्० पोलक का कहना था—" कदाचित इस पीढी मे ऐसा महापुरुष कोई पैदा न हुआ होगा जिसमें गाधी जी के समान सच्चे साधु महात्मा, देशहितैषी और राज-नीतिज्ञ तीनो के गुण विद्यमान हो।" मि० जी. ए. नेटसन का

कहना है—"मनुष्यत्त्व का यही सर्व-श्रेष्ठ आदर्श है, जिस पर महात्मा गाधी पहुँचे हैं।"

सर हेनरी काटन का कहना था—"आज हम लोग अफ्रीका से ऐसे महापुरुष को विदाई दे रहे हैं जिन्होने कठिन परिश्रम और स्वार्थ त्याग करके प्रत्येक पुरुष के हृदय मे अधिक आदर प्राप्त किया है।"

पार्लियामेट के सदस्य भारत के सहायक मत्री मि० चार्ल्स राबर्ट ने कहा था—"महात्मा गाधी ने जो कार्य किया है इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।"

श्रीमती ओलिव श्रेनर ने कहा था—मै गाधी जी को योग्य नेता और स्वार्थ-त्यागी ही नही समझती वलिक वर्त्तमान युग का सब मे बडा आचार्य और गुरू समझती हूँ।"

स्व० लोकमान्य तिलक का कहना था—"महात्मा गाधी के चरित्र से जो शिक्षाएँ ग्रहण की जा सकती है उनमे एक यह भी है कि ईश्वर पर भरोसा करके मनुष्य को निष्काम बुद्धि से अपने कर्त्तव्य पालन मे लग जाना चाहिए सकटो को तृणवत् समझना चाहिए।"

विलायत के मजदूर-दल के प्रतिनिधि मि० वेनसी ने एक बार कहा था—"महात्मा गाधी ऐसे पुरुष है जिनमे उनके शत्रु भी कोई दोष नही निकाल सकते।"

न्यूयार्क लिरिक थियेटर मे पादरी जे० एच० होम्स ने एक बार कहा था—"महात्मा गाधी ही ससार के सब से बडे आदमी है।"

भारत मत्री मि० माण्टेग्यू ने कहा है—"महात्मा गाधी का महत्व और प्रतिष्ठा सर्वाधिक है, उद्देश अति महान और चरित्र निर्मल है। देश-सेवा मे उनके नि स्वार्थ-त्याग की तुलना नहीं है।"

काउण्ट ल्यू टाल्स्टाय ने कहा था—"वर्त्तमान काल मे एक

=)।। प्रति दिन रक्खी है। अब भी उनका खर्च ५-६) रु० महीने से अधिक नही होता। वस्त्रो मे केवल खद्दर का अगोछा, चादर, और कोपीन के अतिरिक्त कुछ नही रहता। इतने पर भी कार्य शील इतने है कि जमीन खोदना, मीलो पैदल चले जाना उनके प्रति-दिन के कार्य है।

महात्मा जी मन, वचन, कर्म से अहिंसा-वादी हैं पर उनका कहना है—" कि प्राणी मात्र से प्रेम करो, किसी शरीर की कभी बुराई तक न चाहो पर किसी के अन्याय को कभी बर्दाश्त न करो उसका स्पष्ट विरोध करो, सत्याग्रह मे सदैव अपने प्राणों की बाजी लगाए रहो।"

महात्मा गाधी का व्यक्तित्व कितना बढा चढा है इसके विषय मे ससार के कुछ प्रसिद्ध पुरुषो की राय देना अनुचित न होगा। गोपाल कृष्ण गोखले का कहना था—" निस्सन्देह महात्मा गाधी उन्ही तत्त्वो से बने है जिन तत्त्वो से बडे २ बहादुर और शहीद बनते है बल्कि वे अपने विलक्षण आत्म-बल से साधारण पुरुषो को भी बहादुर व शहीद बना देते है।"

मद्रास के लार्ड बिशप ने कहा था—" मि० गाधी ईसा मसीह के कही अधिक सच्चे प्रतिनिधि है।"

सर फीरोजशाह मेहता का कहना था—" हम भारतवासियो मे जब तक गाधी सरीखे महापुरुष हैं तब तक हम लोगो को देश के विषय मे निराश न होना चाहिये।"

मि० एच्० एस्० एल्० पोलक का कहना था—" कदाचित इस पीढी मे ऐसा महापुरुष कोई पैदा न हुआ होगा जिसमें गाधी जी के समान सच्चे साधु महात्मा, देशहितैषी और राज-नीतिज्ञ तीनो के गुण विद्यमान हो।" मि० जी. ए. नेटसन का

मात्र गाधी ही ईश्वर के सामने प्रतिनिधि है। मै उनका नाम-करण 'गाधी' के स्थान पर 'दीनबन्धु' करता हूँ।'

पार्लियामेट की सभ्या केनिन ने कहा है—"महात्मा गाधी सचमुच एक युगावतारिक महापुरुष है।"

सिनेटर डब्ल्यू स्कीनर ने कहा था—"उनके जैसा परार्थ-परायण और मधुर-चरित्र व्यक्ति अगरेजो मे भी देखने मे नहीं आया। मुझे उनके मित्र होने का गौरव मिला इससे मेरा जीवन धन्य है।"

परिडत मोतीलाल नेहरू का कथन है—"देश भर पागल है। इस पागलपन को दूर करने वाले एकमात्र चिकित्सक महात्मा गाधी है।"

देशवासिया के लिये महात्मा जी का हृदय कैसा है—एक पुरुष दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह मे गोली से मारे गए थे। महात्माजी विधवा से मिलने गए। विधवा रो रही थी। महात्मा जी को देखते हो वह उनके पैरो पर गिर पडी। महात्मा जी ने मुश्किल से उसे उठाया और एकटक उसकी ओर देखने लगे। उन्हे प्रत्यक्ष दीन, हीन, दुखी भारत-माता का स्वरूप देख पडा। उन्होने उस विधवा से कहा—"माता! चुप रहो, रोओ मत। तुम्हारा रोना मुझ से नही सहा जाता। तुम्हारा पति अत्याचारियो के हाथ से मारा गया है, देश के लिए मारा गया वह ईश्वर की गोद मे बैठा है। अमर हो गया है। मै भी अपना सिर भारत-माता को चढा चुका हूँ। यदि मेरा भी सिर धड से अलग कर दिया जावे और मेरी स्त्री विधवा बना दी जावे तो मुझे बडी शान्ति मिलेगी। मै प्रसन्न होऊँगा कि मेरो प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। माता, दुखित न हो, मैं अपना सिर तुम्हारी गोद मे देता हूँ, तुम्हारे वैधव्य का अपराधी मैं हूँ मुझे क्षमा करो और बल दो।"

अफ्रीका मे ही सरकारी कागज़ पर दस्तखतों के बजाय अँगूठे का निशान लगाने से बहुत से पठान महात्मा जी के दुश्मन हो गए और उन्हे इतना मारा कि वे मृतप्राय हो गए। इसके बाद भी वे लोग महात्मा जी को जान से मारने को ताक मे रहने लगे। यह देख कर एक जर्मन इजीनियर जो महात्मा जी का भक्त था एक तमचा महात्मा जी की रक्षा के लिए हर समय साथ रखने लगा। और महात्मा जी जहाँ जाते, वहाँ उनके पीछे परछाई की तरह रहने लगा। महात्मा जी को सन्देह हुआ। एक दिन उन्होंने जो उसकी जेब मे हाथ डाला तो तमचा निकला। महात्मा जी ने पूछा–" टाल्स्टाय के शिष्य होकर तुम्हारे पास यह तमचा क्यो ? उसने कहा—" कभी २ जरूरत आ पडती है " महात्मा जी–" भला इसकी क्या ज़रूरत आ पड़ती है ? " उसने कहा—" दुष्ट लोग आपके मारने की तलाश मे रहते है। " महात्मा जी—" मेरी रक्षा की जिम्मेवारो तुम्हीं ने ले रक्खी है ? तुम इस तमचे से मेरी रक्षा करोगे, अच्छा लो मैं इसी से अपने टुकडे टुकडे किये देता हूँ। तुम्हारा मुझ पर सच्चा स्नेह नहीं है वर्ना तुम इस नश्वर शरीर की रक्षा न करते। मेरे अमरत्त्व की तुम्हे अभिलाषा होती। यह तमचा रखना बडे शरम की बात है। " उस दिन से उसने समझा कि महात्मा जी कितने महान् व्यक्ति हैं। पठानो का विरोध भो शान्त हो गया।

महात्मा जी ने नमक इस प्रकार छोडा—एक बार उनकी स्त्री बहुत समय से बीमार थी। महात्मा जी ने विचारा कि नमक इन्हे हानि करता है, बोले—" तुम नमक छोड दो तो शायद अच्छा हो " उन्होने कहा—" वाह नमक कैसे छोड़ा जा सकता है, सब चीज़ें छूट जायँ पर नमक नहीं छूट सकता है ? " महात्मा जी—" छोड दो तो क्या होगा ? " उन्होने कहा—

" आप ही जरा छोड़ दे देखें फिर क्या होता है ? " महात्मा जी ने कहा—" अच्छा "। उस दिन से महात्मा जी ने नमक छोड़ ही दिया और क़रीब १५-१६ वर्ष नही खाया।

एक बार महात्मा जी ने अपने विद्यार्थियो को किसी काम के करने का निषेध किया पर लडको ने चुरा कर वही काम किया। महात्मा जी का किसी तरह मालूम हो गया, उन्होने पूछा तो लडके चुप हो रहे। सबने झूठ छिपाना चाहा। महात्मा जी ने अपने गाल पर ३-४ थप्पड जोर से लगाए, बोले–" अवश्य मुझ मे ही कोई दोष है, तभी तुम लोग सत्य बात मुझ से छिपाते हो "। लड़को ने क्षमा माँगी और सच २ कह दिया।

स्व० लोकमान्य तिलक को हिन्दी से प्रेम न था, न उनकी युक्तियो के आगे कोई उनसे हिन्दी के लिये कहने की हिम्मत करता था। कलकत्ते की एक बड़ी सभा मे देश के बड़े २ नेता मौजूद थे। लोकमान्य तिलक का अगरेजी मे व्याख्यान हो चुका था। महात्मा जी उठे और श्रोताओ से बोले—" आप लागो मे जिस जिसने लोकमान्य का व्याख्यान समझा हो हाथ उठावे। " अगरेजी समझने वाले अल्पसख्यक श्रोताओ ने हाथ उठा दिया। महात्मा जी ने कहा—" अब वे लोग हाथ उठावें जिन्होने व्याख्यान नही समझ पाया "। तब तो बहुत हाथ उठ गए।

महात्मा जी ने लोकमान्य की ओर हाथ जोड कर कहा—" इसीलिए हिन्दी पढने की आवश्यक्ता है। यदि लोकमान्य जी आज हिन्दी मे बोले होते तो हमारे अधिक भाई आपके व्याख्यान समझने से वचित न रह जाते। अगरेज को समझाने के लिए हमे अपनी मातृ-भाषा छोड कर अगरेजी पढने की आवश्यक्ता नहीं। यदि उसे हमारी बात समझने की गरज होगी तो वह

खुद हिन्दी पढेगा या दुभाषिया रक्खेगा। लोकमान्य जी पर उनकी बात का इतना असर पडा कि उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि " मैं दो महीने मे पहले हिन्दी सीख लूँगा। " इसके बाद लोकमान्य ने हिन्दी सीखी।

एक बार एक लडके ने जान बूझ कर कोई अपराध किया। महात्मा जी को इससे दु ख हुआ उन्होंने कहा—" इसके प्राय-श्चित्त मे मैं कल से १५ दिन का उपवास करूँगा। " सब लोग घबड़ा गए। इसलिए और भी कि श्रीमती गाधी उस समय अधिक बीमार और कमजोर थीं, इस समाचार से उनकी क्या दशा होगी ? यही विचार सबको और भी बेचैन किए था। महात्मा जी से जब लोगो ने प्रार्थना की कि वे उपवास न करें और यदि न मानें तो कुछ ससय ठहर कर करें। महात्मा जी ने कहा—" यह ठीक है कि कस्तूरी बाई को मेरे उपवास से कष्ट होगा। सभव है प्राणान्त भी हो जावे। पर मैं सचाई और दृढ निश्चय से क्या डरूँ ? आप लोग उन्हें ही क्यो न समझा दें कि वे चित्त मे किसी प्रकार का विचार न करें। " दूसरे दिन से उपवास किया।

महात्मा जी मद्य-मास आदि का कभी सेवन न करते थे। उससे बडी घृणा करते थे। बचपन में एक बार दुष्ट साथियो के ससर्ग मे पड कर घर वालो से छिपा कर मास खाना प्रारम्भ किया। पर चित्त मे बहुत सकुचाने लगे। भोजन न करने पर घर वाले पूछते तो बहाना करना पडता था। परन्तु १०-५ दिन में ही आत्मा मे उन के इतनी ग्लानि पैदा हुई कि उन्होंने मित्रो का साथ छोडना उचित समझा पर इस प्रकार मा बाप से छिपा कर बुरा काम करना उचित न समझा। बस दुष्ट साथिया के सग के

" आप ही ज़रा छोड़ दे देखें फिर क्या होता है ? " महात्मा जी ने कहा—" अच्छा "। उस दिन से महात्मा जी ने नमक छोड़ ही दिया और क़रीब १५-१६ वर्ष नही खाया।

एक बार महात्मा जी ने अपने विद्यार्थियो को किसी काम के करने का निषेध किया पर लडको ने चुरा कर वही काम किया। महात्मा जी को किसी तरह मालूम हो गया, उन्होंने पूछा तो लडके चुप हो रहे। सबने झूठ छिपाना चाहा। महात्मा जी ने अपने गाल पर ३-४ थप्पड जोर से लगाए, बोले–" अवश्य मुझ मे ही कोई दोष है, तभी तुम लोग सत्य बात मुझ से छिपाते हो "। लड़को ने क्षमा माँगी और सच २ कह दिया।

स्व० लोकमान्य तिलक को हिन्दी से प्रेम न था, न उनकी युक्तियो के आगे कोई उनसे हिन्दी के लिये कहने की हिम्मत करता था। कलकत्ते की एक बड़ी सभा मे देश के बड़े २ नेता मौजूद थे। लोकमान्य तिलक का अगरेज़ी मे व्याख्यान हो चुका था। महात्मा जी उठे और श्रोताओ से बोले—" आप लोगो मे जिस जिसने लोकमान्य का व्याख्यान समझा हो हाथ उठावें। " अगरेजी समझने वाले अल्पसख्यक श्रोताओ ने हाथ उठा दिया। महात्मा जी ने कहा—" अब वे लोग हाथ उठावें जिन्होने व्याख्यान नही समझ पाया "। तब तो बहुत हाथ उठ गए।

महात्मा जी ने लोकमान्य की ओर हाथ जोड़ कर कहा— " इसीलिए हिन्दी पढने की आवश्यक्ता है। यदि लोकमान्य जी आज हिन्दी मे बोले होते तो हमारे अधिक भाई आपके व्याख्यान समझने से वचित न रह जाते। अगरेज को समझाने के लिए हमे अपनी मातृ-भाषा छोड कर अगरेजी पढने की आवश्यकता नहीं। यदि उसे हमारी बात समझने की गरज़ होगी तो वह

खुद हिन्दी पढेगा या दुभाषिया रक्खेगा। लोकमान्य जी पर उनकी बात का इतना असर पडा कि उन्होने उसी समय प्रतिज्ञा की कि "मैं दो महीने मे पहले हिन्दी सीख लूँगा।" इसके बाद लोकमान्य ने हिन्दी सीखी।

एक बार एक लडके ने जान बूझ कर कोई अपराध किया। महात्मा जी को इससे दु ख हुआ उन्होने कहा—"इसके प्राय-श्चित्त मे मैं कल से १५ दिन का उपवास करूँगा।" सब लोग घबडा गए। इसलिए और भी कि श्रीमती गाधी उस समय अधिक बीमार और कमज़ोर थीं, इस समाचार से उनकी क्या दशा होगी? यही विचार सबको और भी बेचैन किए था। महात्मा जी से जब लोगो ने प्रार्थना की कि वे उपवास न करें और यदि न माने तो कुछ ससय ठहर कर करें। महात्मा जी ने कहा—"यह ठीक है कि कस्तूरी बाई को मेरे उपवास से कष्ट होगा। सभव है प्राणान्त भी हो जावे। पर मैं सचाई और दृढ निश्चय से क्या डरूँ? आप लोग उन्हे ही क्यो न समझा दें कि वे चित्त मे किसी प्रकार का विचार न करें।" दूसरे दिन से उपवास किया।

महात्मा जी मद्य-मास आदि का कभी सेवन न करते थे। उससे बडी घृणा करते थे। बचपन मे एक बार दुष्ट साथियो के ससर्ग मे पड कर घर वालो से छिपा कर मास खाना प्रारम्भ किया। पर चित्त मे बहुत सकुचाने लगे। भोजन न करने पर घर वाले पूछते तो बहाना करना पडता था। परन्तु १०-५ दिन मे ही आत्मा मे उन के इतनी ग्लानि पैदा हुई कि उन्होने मित्रो का साथ छोडना उचित समझा पर इस प्रकार मा बाप से छिपा कर बुरा काम करना उचित १ग्समझा। बस दुष्ट सपथिया के सग के

साथ २ हमेशा के लिए मद्य-मास भी छोड दिया। विलायत में आपकी इस प्रतिज्ञा को उन्होने बड़ी दृढता के साथ निबाहा।

महात्मा जी अपना जीवन-चरित्र 'सत्त्य के प्रयोग' अथवा 'आत्म-कथा' के नाम से लिख रहे हैं जिसका अधिक अश पत्रों मे प्रकाशित हो चुका है। महात्मा जी का पवित्र चरित्र ससार के लिए अनुकरणीय है। धन्य है भारत-भूमि और भारतवर्ष जहाँ ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ। यदि महात्मा जी किसी अन्य देश मे उत्पन्न हुए होते तो न माल्रूम उन की पूजा किस भॉ ति होती और कितने उच्च पुरुष माने जाते। महात्मा गाधी से न केवल उन्ही का गौरव हुआ है बल्कि उनसे भारत को गौरव प्राप्त हुआ है। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह ऐसे महापुरुष को चिरायु करे।

जगमगाते हीरे



कविसम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

१६—कवि-सम्राट श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

कोई २ पुरुषरत्न ऐसे होते हैं जिनसे न केवल उनका ही गौरव होता है बल्कि उस जाति और देश का भी गौरव होता है जिसमे वे उत्पन्न होते हैं।

ससार-प्रसिद्ध कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर ऐसे ही महा पुरुषो मे हैं। भारतवर्ष को ऐसे सुपुत्र से गर्व है। उन्होने ससार को दिखला दिया है कि गए-बीते समय मे भी भारत मे गुदड़ी के लाल पडे हुए हैं। दुनियाँ के इने-गिने महापुरुषो मे कवीन्द्र रवीन्द्र की भी गणना है।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म सन् १८६० ई० मे बगाल प्रान्त के एक स्थान पर क्षत्रिय कुल मे हुआ था। उनके पिता का नाम था श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर। टैगोर घराना अभी से नही बहुत समय से विद्या, बुद्धि, धन सम्पत्ति और इश्वर-भक्ति मे बहुत बढा-चढा और प्रसिद्ध रहा है। उनके पितामह श्री द्वारिकानाथ टैगोर बडे सम्पत्तिशाली और विद्वान पुरुष थे। श्री द्वारिकानाथ जी के पुत्र श्री देवेन्द्रनाथ भी जिनके सुपुत्र हमारे चरित-नायक हैं—एक महापुरुष ही हुए हैं। वे तो महर्षि देवेन्द्र के नाम से प्रख्यात थे। पूर्ण ईश्वर-भक्त, अपूर्व दानी, परम विद्वान और महात्मा पुरुष थे। लाखों रुपया दान करते थे। हिचकिचाहट तक न पैदा होती थी। स्वत कष्ट उठा कर भी दूसरों को दान करना महर्षि देवेन्द्रनाथ सदृश पुरुषो का ही कार्य था। सौभाग्य से वे ही गुण कवीन्द्र रवीन्द्र मे भी विद्यमान् हैं।

श्री रवीन्द्रनाथ अपने छै भाइयो में सब से छोटे हैं। उनके बडे भाई भी सब बडे विद्वान हैं।

रवीन्द्रनाथ जी जब छोटे थे तभी उनकी माता का शरीरान्त हो गया था। मातृ-सुख उनके भाग्य मे बदा न था इसीसे उससे बञ्चित कर दिए गए, पर पिताजी ने बड़ी देख-रेख के साथ पुत्र रवीन्द्र का लालन-पालन किया।

उनकी रखवाली के लिये हर समय एक मनुष्य उनके साथ रहता। पढने के अतिरिक्त वे घर से बाहर न जाने पाते थे। बाहर निकलने तक मे दो आदमी उनके साथ रहते थे।

रवीन्द्रनाथ जी जब स्कूल मे पढने भेजे गए तो उन्होने वहाँ देखा कि यहॉ तो विचित्र दशा है। छोटे २ बालक जरा २ से अपराध पर डडो से पीटे जाते हैं। यदि कही पाठ न याद हुआ तो फिर कहना ही क्या मास्टर साहब पर भूत ही सवार हो जाता है और बुरी तरह लडके पर टूटते हैं। दिन रात नौकरों के बीच मे लाड प्यार से रहने वाले, हरे भरे वृक्षो की छाँह मे घूमने वाले सुकुमार बालक रवीन्द्रनाथ को ये दृश्य देख कर बहुत दु ख होता था। पढने मे उनका मन न लगता था पर डर के मारे पढने नित्य जाते थे। जाने मे कभी नागा न करते थे। स्कूल मे जब सब लडके पाठ याद किया करते थे तो रवीन्द्र बाबू बैठे २ अपने हृदय मे तरह २ की बाते सोचा करते थे। वे विचारा करते थे कि इस वसुन्धरा का ऊपरी भाग तो हम लाग देख रहे हैं। इसके भीतर न मालूम इसका क्या आकार प्रकार होगा, क्या रूप-रङ्ग और रङ्ग-ढङ्ग हागा। जहॉ तक मेरी दृष्टि जाती है, पृथ्वी का अन्त दिखलाई ही नहीं पडता। अखीर अन्त तो कही होगा ही। कैसे इस पृथ्वी की तह पाई जाय, यदि एक पर एक बाँस गाड़ते चले जॉय तो शायद अवश्य इसकी तह मिल जायगी इत्यादि।

पढने के समय तथा घर मे वे प्राय इसी प्रकार की बातें सोचा करते थे। साल के अन्त मे जब परीक्षा हुई तो रवीन्द्र बाबू का अपनी श्रेणी मे प्रथम नम्बर आया। साथी तो आश्चर्य मे पड ही गए, अध्यापको को भी कम विस्मय न हुआ। उनकी दुबारा परीक्षा ली गई पर 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' फिर प्रथम नम्बर आए। अब सिवाय दाँतो तले उँगली दबाने के अध्यापक और कर ही क्या सकते थे।

पाठक समझेंगे कि जब रवीन्द्र बाबू बिलकुल ही न पढ़ते थे तो प्रथम किस प्रकार आते थे? यह बात नही कि वे बिलकुल ही न पढते थे। घर पर प्रत्येक कार्य के लिए समय नियत था। उसी के अनुसार सब काम करते थे। घर पर उनके पढने लिखने का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। प्रात काल उठ कर शौचादि से निवृत्त होकर एक पहलवान से कुश्ती लडना पडता था फिर उसी दशा मे पढे हुए विषयो (गणित, इतिहास, भूगोल, साहित्य आदि) का अभ्यास करना पडता था। भोजन के बाद स्कूल जाते वहाँ से लौट कर खेलते कूदते, फिर ड्राइङ्ग खीचते। इसके पश्चात् रात्रि मे अगरेज़ी पढ कर सो जाते थे। यह उनका नित्य का नियम था। प्रत्येक रविवार को उन्हे गाना बजाना सिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त नित्य ही उनके यहाँ बडे २ विद्वानों और शिष्ट व्यक्तियो का जमघट रहा करता था जिससे उनकी योग्यता की उन्नति मे उनसे बहुत सहायता मिलती थी। बिना पढ़े ही बहुत सा ज्ञान उन्हे सत्सङ्ग द्वारा ही प्राप्त होता था।

यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि रवीन्द्र बाबू का मन पढने मे बहुत कम लगता था क्योंकि उनका हृदय तो विशाल था, भावनाएँ उच्च थीं। उन्हे कोई नौकरी तो करनी नहीं थी उन्हे तो ससार के हृदयो पर अपने दूसरे ही पाण्डित्य का सिक्का जमाना

था। वे तो अहर्निश प्रकृति का पाठ पढते थे। छायादार सघन वृक्षो की हरियाली, वृक्षो मे लगे हुए पक्षियो के घोसले, नदी की लहराती हुई लहरे उनके हृदय को मोहित कर लेती थी। सध्या समय जब बगीचे मे इधर-उधर रङ्ग बिरङ्गे पुष्पो से अठखेलियाँ करते हुए शाम हो जाती, अस्त-प्राय सुनहली किरणो से न केवल नीलाकाश ही सुनहला हो जाता बल्कि वृक्ष, लताएँ, पुष्प, तमाम बगीचा, अपना शरीर तक सुनहला प्रतीत होता तो रवीन्द्र बाबू का हृदय खिल उठता था। हृदय मे भी भाँति २ की सुनहली हिलोरे उठने लगती थी। सुनहला किरणो से जब फूल पत्ते चमकने लगते, उनकी शोभा दूनी हो जाती, तो हमारे चरित नायक आश्चर्य और मोद से भरे इधर उधर देखने लगते। प्रकृति देवी की निराली छटा ऊनके हृदय मे बैठ कर उसे निर्मल और सरस बना देती थीं।

बचपन से ही रवि बाबू का हृदय कवि-हृदय हो चला था। उसी समय से वे कविताएँ करने लगे थे। थोडा पढने के पश्चात् ही स्कूल कालेज की पढाई समाप्त कर दी। उपाधि-लिप्सा को नमस्कार कर लिया। घर पर रह कर ही अध्ययन करने लगे। काव्य-ग्रन्थो का विशेष रूप से रसास्वादन किया।

रवि बाबू के कविता के आदि गुरु उनके भाञ्जे है। उन्होने उन्हे कविता करना बतलाया। उससे पहले रवि बाबू कविता करना बहुत कठिन समझते थे। धीरे २ जब उन्हे कविता का चस्का लगा तो जो कविता वे बनाते वह अपने सब साथी सगियो को अवश्य सुनाते। लोग अच्छी न होने के कारण न सुनना चाहते तो रवि बाबू शान्त न हो जाते थे, जबरन सुनाते थे। लोग हँसते थे तो उसकी पर्वाह न करते थे। पहले तो लोग ऊबते थे

पर पीछे २ कविता भी बहुत अच्छी होने लगी और सुनने वाले भी चाव से सुनने लगे।

जब वे छोटे ही थे और कविता करने लगे थे तो एक बार बहुत दिनो मे उनके पिता बाहर से घूम कर घर आए और उनसे बोले—"क्या, हिमालय पर्वत पर घूमने चलोगे?" रवि बाबू ने कहा—"हाँ, जरूर चलूँगा।" कुछ दिन रवि बाबू पहाड पर जाकर रहे। वहाँ निडर होकर जङ्गलो मे घूमा करते थे और प्राकृतिक शोभा का आनन्द लते थे। साथ हा कविता का अभ्यास भा उत्तरोत्तर प्रौढता पा रहा था।

अब तो रवि बाबू स्वाभाविक-प्रवृति, अध्ययन और अभि-रुचि के कारण बहुत अच्छी कविता करने लगे। उनकी कविताओ का चारो ओर आदर होने लगा। कविता को 'गीता-ञ्जलि' नामक एक अद्वितोय पुस्तक लिखी जिसकी टक्कर की उत्कृष्ट कविता आज तक देखने मे नही आई। उक्त पुस्तक पर रवि बाबू को १९२४ ई० मे ससार प्रसिद्ध सवा लाख रुपये का नोवेल पुरस्कार मिला। जिससे उनकी विमल कीर्ति ससार मे फैल गई और ससार उन्हे वर्त्तमान दुनिया का सर्व-श्रेष्ठ कवि, कवि-सम्राट् मानने लगा।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने गोरा, नौका डूबी, डाकघर आँख की किरकिरी, घर बाहर, प्राचीन साहित्य आदि और भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो साहित्य-जगत् में चाव से सम्मानित की गई है। पर एक गीताञ्जलि ने ही रवि बाबू को अमर कर दिया है। उनकी कविताएँ ओजस्विनी, मम स्पर्शिणी, हृदयग्राही, और चित्त को हिला देने वाली होती हैं। उनमे उच्च भावनाएँ होती हैं। अनुपम कल्पनाएँ होती है। उनमे प्राकृतिक सौन्दर्य और नैसर्गिक छटा छहरती हुई दिखलाई दती है। पाठक उनकी कविताओं को

पढ़ते हुए तन्मय हो जाते हैं। उनकी लेखनी में ज़बर्दस्त प्रभाव है। एक २ लाइन के एक २ शब्द मे बल होता हैं, जीवन होता है और कवित्त्व होता हैं।

योरोप का कोई भी ऐसा देश नही है जहाँ निमंत्रित होकर कवि-सम्राट रवीन्द्र नाथ कई २ बार न गए हो और जहाँ अपूर्व स्वागत और सम्मान न पाया हो। नित्य ही वह भ्रमण करते रहते हैं। जहाँ जाते है अपार नर नारियो की भीड होती है। लोग एक टक होकर घटो उनके तेज-पूर्ण सुदर मुख को देखा करते है। उनके मुख से ही ऋषियो के पूव गौरव की आभा टपकती हुई सी ज्ञात होती है। उनमे विचित्र आकर्षण शक्ति है। एक २ शब्द उनका जादू का काम करता है। भारत के नर-रत्नो मे योरोप मे सब से अधिक आदर पाने वाले महापुरुष टैगोर ही है। बडे २ सम्राट् रवि बाबू का आदर करने मे अपना गौरव समझते है।

रविबाबू विश्वप्रेमी है। ससार के समस्त प्राणियो से उन्हे प्रेम है। किसी प्रकार का भेदभाव उनके हृदय मे स्थान ही नही पाता।

कवीन्द्र रवीन्द्र प्राचीन सभ्यता के पूरे उपासक और उसके पूरे समर्थक है। वे उसी को अपना आदर्श मानते और उसी को उपदेश करते है। प्राचीन ग्रन्था से उन्हे बडा अनुराग है। उनकी प्राचीन साहित्य नामक पुस्तक इस विषय मे पढने लायक है। कविवर रवीन्द्र बाबू ने बङ्गाल के शान्ति निकेतन बोलपुर मे "विश्व भारती" नामक एक आश्रम खोल रक्खा है जहाँ लड़को का प्राचीन ऋषि मुनियो की भाँति शिक्षा दी जाती है। अध्यापक लोग वहाँ कभी अपने हाथ मे मारने के लिए छडी डण्डा नही रखते। कोई लडका कदाचित भारी से भारी अपराध करे फिर भी उसे पीटना क्या डाँटा तक नही जाता। प्यार और पुचकार से ही अध्यापक लड़

कों को सुधार लेते हैं। सच्ची बात यह है कि मास्टरों के व्यवहार का लडकों पर ऐसा असर पडता है कि लडके स्वत कोई बुराई नहीं करते।

आश्रम का स्थान शहर से दूर एक ऊँची जमीन पर है। रवि बाबू के पिता महर्षि देवन्द्रनाथ वहीं पर पूजन आदि किया करते थे और अधिक रहते थे इसी लिए रविबाबू ने भी उस स्थान को बहुत पसन्द किया। आश्रम से चारो ओर की जमीन ढालू है। आश्रम से चारो ओर नदी वृक्ष, पहाड़, बाग, नगर, ग्राम आदि प्राकृतिक दृश्य सब साफ दिखलाई पडते है। प्रकृति का पाठ पढने के लिए विद्यार्थियो को कहीं जाना नहीं पडता। वहां बैठ २ सब दृश्य दिन रात आँखो के सामने रहते हैं। रवीन्द्र बाबू का विचार है कि यदि ये वस्तुएँ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न होती रहे तो पढने का मजा ही क्या है।

यहाँ पढाई विशाल भवनो मे नही होती बल्कि वृक्षो के नीच खुले मैदानो में होती है।

लडके, लड़कियाँ, बालक, युवा, वृद्ध सभी के लिए विश्व भारती मे शिक्षा का प्रबन्ध है। खाने पीने, खेलने कूदने, कला कौशल सीखने आदि सब का उत्तम प्रबन्ध है।

यहाँ के विद्यार्थी कालेजो की उच्च परीक्षाएँ भी दे सकते हैं। देश विदेशो के आए हुए प्रसिद्ध विषयो के ज्ञाता प्रोफेसर अध्ययन कार्य करते है।

चित्रकला और सगीत का विशेष प्रबन्ध है। पुस्तकालय तो यहाँ का इतना बड़ा है कि हिन्दुस्तान मे शायद इतना बडा पुस्तकालय न होगा। सभी भाषाओ की पुस्तकें मौजूद है।

यहाँ एक बात बहुत बडी, है वह यह कि यहाँ के निवासियो

मे प्रेम और सेवा का भाव आदर्श-रूप मे विद्यमान है। अड़ोस पड़ोस के गाँवो मे जाकर लोगो की सेवा करना, मुसीबत मे साथ देना, आगत अतिथियो का स्वागत और सेवा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। देश-विदेश के प्रसिद्ध २ पुरुष प्राय इस पवित्र आश्रम के दर्शनार्थ आते रहते है। विश्वभारती से तात्पर्य ही "समस्त ससार को एक प्रेम-सूत्र मे गूथना" है। रवि बाबू के इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति सचमुच इस आश्रम से हो रही है।

कविवर रवीन्द्र नाथ जी मे अद्भुत आकर्षण शक्ति है। कोई भी एक बार उनसे मिलकर ही प्रभावान्वित हो जाता है।

देश-भक्त साधु एण्ड्रयूज रवि बाबू के अनन्य भक्त हैं। एक बार मि० एण्ड्रयूज बहुत सख्त बीमार हो गए। मि० एण्ड्रयूज का कहना है कि "मुझे उस समय इतना कष्ट था कि मै अपनी मृत्यु मना रहा था, पर गुरुदेव (रवि बाबू) के आ जाने से ही मुझे एक विचित्र शान्ति प्राप्त हुई और मै अच्छा हो गया।"

रवि बाबू को योरोप के भिन्न २ देशो से प्राय निमंत्रण आते रहते है। रवि बाबू जहाँ २ जाते है, उनका अपूर्व स्वागत होता है।

आज जिन महापुरुष रवीन्द्र नाथ ने कई बार योरोप घूम डाला और जिनका आदर करते हुए प्रत्येक पुरुष अपना गौरव समझता है। वही जब छोटे थे और कई नौकर हर समय उनके साथ रहते थे तो एक नौकर उन्हे बहुत तङ्ग किया करता था। वह खड़िया या कोयले का एक घेरा बना देता था और रवि बाबू को उसी मे बैठाल देता था। फिर कहता था—"बस, चुपचाप इसी घेरे के भीतर बैठे रहना कही जाना मत। अगर जरा भी निकले तो ठीक न होगा" बेचारे रवि बाबू चुपचाप उसी घेरे में रहते थे।

जब घर से बाहर निकलने का कोई उपाय न देखते थे तो निराश होकर अपने घर के कमरे की एक खिड़की मे सिकचे पकड कर बैठ जाते थे और बाहर की ओर देखा करते थे। खिडकी के पास ही एक तालाब था जिस पर प्राय स्नान करने वालो की भीड रहा करती थी। रवि बाबू उसी भीड के दृश्य और उठती हुई पानी की हिलोरें देख २ कर बहुत प्रसन्न होते थे।

आज ससार मे कवि-सम्राट् रवीन्द्र नाथ का जो सम्मान है उससे भारतवर्ष को गर्व है। परमात्मा उन्हे चिरायु करे।

१७—डाक्टर सर जगदीश चन्द्र बोस



न दिव्य आत्माओं ने प्रकृति पर विजय पाकर ससार मे शक्ति के रहस्य को अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है, जिन पुरुषो ने वैज्ञानिक अद्‌भुत आविष्कारो से ससार को आश्चर्यान्वित किया है मानव-ज्ञान के इतिहास मे उनका नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायगा। सौभाग्य से प्रत्येक विषय के अद्वितीय पुरुष को जन्म देने का अधिकार भारतवर्ष को प्राप्त है। हम इन पृष्ठो मे जिस महापुरुष का जीवन-चरित लिख रहे है वे प्रतिभाशाली ससार मे अमर-कीर्ति कमाने वाले, अद्वितीय वैज्ञानिक, डाक्टर जगदीश चन्द्र बोस हैं।

सन् १८५८ ई० मे ढाका ज़िले के विक्रमपुर नामक ग्राम में डाक्टर बसु का जन्म हुआ। बसु के पिता श्री भगवान चन्द्र बसु एक उच्च-खानदान के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उन्होने प्रारम्भ से ही अपने होनहार पुत्र की प्रवृत्ति मे यथेष्ट ध्यान दिया। ऐसे २ मौके दिए जिनसे उनके वैज्ञानिक प्रवृति का उत्तरोत्तर विकाश होता जाय। बडी योग्यता के साथ उन्होने पुत्र बसु का लालन पालन किया। इस बात का पूरा ध्यान रक्खा कि पुत्र के सस्कार अच्छे हों और भविष्य मे वह भारत का एक उज्ज्वल तारा हो। कितने ही माँ-बाप लापरवाही या अनेक अन्य कारणो से बच्चो की स्वाभाविक मानसिक प्रवृत्ति को नही जान पाते, जो जान भी पाते हैं वे उसे योग्य या उचित मार्ग पर नहीं

जगमगाते हीरे



विज्ञानाचार्य्य सर जगदीशचन्द्र बोस

लगाते। इससे बडी खराबी होती है। तबीयत और लगन के विरुद्ध बच्चे को किसी काम में लगाने से उसकी प्रतिभा-शक्ति विकसित होने के बजाय मुरझा जाती है और वह भविष्य में एक महान व्यक्ति होने के बजाय साधारण पुरुष ही रह जाता है। बसु के पिता में यह बात न थी। वे बसु की मानसिक प्रवृत्ति की ओर पूरा ध्यान रखते थे और जिधर बालक बसु की लगन होती थी उसमे सहायता देते थे।

बसु महोदय प्रारम्भ मे अगरेज़ी स्कूल मे न भेजे जाकर देहाती स्कूल मे भेजे गये। इसके विषय मे उनका कथन है कि "मेरे पिता के विचार शिक्षा-सम्बन्ध म, उस समय निश्चित हो चुके थे। यद्यपि उनके मातहतों ने अपने पुत्रो को इस इच्छा से अगरेजी स्कूलों मे भेजा कि वे आगे चलकर बडे सभ्य और महान पुरुष हो, पर मै देहाती स्कूल मे भेजा गया जहाँ खेतिहर और मछुओ के लडको के साथ पढना और खेलना पडता था। वे लडके मुझे भयकर बनैले जानवरो की, जो जङ्गल मे घूमा करते हैं और उन जानवरो की जो बडी २ नदियो तथा तालाबो के अगाध जल मे गहरे डूब जाते हैं, बातें सुनाया करते थे। ये बाते मुझे बहुत पसन्द आती थी। मैने उन साथी लडको से प्रकृति का प्रेम पाया। सच्चे मनुष्यत्व का पाठ पढा"।

पाठक सोच सकते हैं कि बसु के पिता का निश्चय कितना उत्तम था और वे कितने दूरदर्शी थे। अपनी माता की सहायता के विषय मे डाक्टर बसु कहते हैं—एक बार जब मैं अपने देहाती साथियो के साथ घर आया तो मुझे मालूम हुआ कि मेरी माता बडो उत्सुकता के साथ हम लोगो की बाट जोह रही हैं। वह कट्टर और पुराने ख्यालातो की हिन्दू थी। पर मेरे अछूत साथियो का भी उन्होंने हार्दिक प्रेम-भाव से स्वागत किया और अपने

पुत्र की तरह खिलाया पिलाया। वास्तव मे माता ने उस दिन मुझे मनुष्य-प्रेम का पाठ पढा दिया।

ग्रामीण शिक्षा के बाद बसु महोदय उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलकत्ते आए और वहाँ सेंट झेवियर कालेज से ग्रेजुएट हुए। ग्रेजुएट होने के बाद उनकी प्रबल इच्छा हुई कि मै इङ्गलैंड जाकर सिविल सर्विस की परीक्षा पास करूं और किसी अच्छे अधिकार पर अधिष्ठित होऊ। पिता जी से उन्होंने प्रार्थना की। उनके पिता जी उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पूर्व ही जान चुके थे कि जगदीश शासन-क्षेत्र मे उपयुक्त नही। ईश्वर ने इसकी रचना दूसरे ही क्षेत्र के लिए की है। इसी से इन्होंने इगलैंड भेजने स बिलकुल इन्कार कर दिया। डा० बसु ने कई बार उनसे आग्रह किया पर नाही के अतिरिक्त कोई उत्तर न मिला। डा० बसु खुद लिखते है—

"मैं पूज्य पिता जी के सामने जब जब सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए जाने की प्रार्थना करता था तब तब वे मुझे साफ इन्कार कर देते थे। धीरे २ मुझे यह मालूम होने लगा कि मेरा जन्म दूसरे पर शासन करने के लिए नही बल्कि अपने आप पर ही शासन करने के लिए हुआ है। मै शासक होने के लिए बनाया ही नही गया हू"। अन्त मे पिता जी ने इगलैंड भेजा भी तो वैज्ञानिक अध्ययन के लिए न कि सिविल सर्विस परीक्षा के लिए।

डा० बसु विलायत गए और वहाँ से विज्ञान मे बी ए-बी एस, सी होकर कलकत्ते वापस आगए। कलकत्ते आने पर उन्हें कालेज मे भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर की जगह मिली। कालेज में डा० बसु को सन्तोष न हुआ क्योंकि यहाँ वैज्ञानिक खोज के उपयुक्त साधन न थे। वे लिखते है, "जब मै पहले पहल यहाँ

आया तो कालेज के उपयुक्त काई प्रयोग-शाला न था, मुझे अपनी ही प्रयोग शाला मे कार्य करना पडता था। दश वर्ष के बाद एक छोटी सी प्रयोगशाला की व्यवस्था की गई।"

प्रोफेसरी के साथ २ बसु महादय ने प्रसिद्ध २ पत्रा मे वैज्ञानिक लेख लिखना भी शुरू कर दिया आर एकाग्रचित्त स विज्ञान-क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए। सारा मनावृत्तियो को इधर उधर से खीच कर एक ही लक्ष्य पर केन्द्रीभूत कर दिया। व कहते है कि चित्त की वृत्तियो को केन्द्रीभून करने से, एक ही विषय की ओर लगाने से जैसे आध्यात्मिक सफनता प्राप्त होती है उसी प्रकार वैज्ञानिक सफलता प्राप्त होती है। बिना चित्त-वृत्तियो को एकाग्र किए विज्ञान मे कभी सफलता प्राप्त करना दुर्लभ है।"

"हमे अपने मन का एकाग्र रखना चाहिए। जो कार्य किया जाय उसमे एक भाव हो जाना चाहिए। वात पहले मन मे आती है तब की जाती है। अतएव कोई काम करने के लिए मन की शान्ति और स्थिरता की बडी जरूरत है।"

"वैज्ञानिक जीवन बडे कष्ट का है। मृत्यु तो हमारे सिर पर सदा ही सवार रहती है। जरा चूके कि झट धर दवाया। देखिए न! हवाई जहाज का आविष्कर्त्ता ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा मे ही अपनी जान से हाथ धो वैठा।"

डा० बसु के जैसे उद्गार हैं ठीक वैसा ही जीवन है। एक मात्र 'खोज' ही उन्हो ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। बडी २ कठिनाइयाँ सामने आई पर उन्होने उनकी जरा भी परवाह न कर वीरता से सामना किया। वे अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए विघ्नो की बात ही क्या मृत्यु तक की परवाह नही करते।

सर बसु ने अपने आश्चर्य-कारक अविष्कारो से ससार को अचभे मे डाल दिया। उन्होने विज्ञान मे जो मार्के की वृद्धि की उसके लिए जनता ने उनका हृदय से अभिनन्दन किया। लन्दन विश्वविद्यालय ने उन्हे 'डाक्टर आफ साइन्स' को उपाधि देकर उनका गौरव बढाया।

ससार मे बेतार के तार का प्रचालित होना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और आश्चर्यकारक बात है। इस चमत्कार पूर्ण अविष्कार मे ससार के तीन महान विज्ञान-वेत्ता प्रवृत्त हुए थे जिनमे एक हमारे चरितनायक भी है। यह पहला अवसर था जब एक अद्भुत रहस्य का पता लगाने के लिए ससार के तीन विज्ञान-वेत्ता स्वतत्ररूप से खोज करने मे जुटे हुए थे। वे डा० जगदीशचन्द्र बोस है जिन्होने सब से पूर्व इस महान कार्य मे सफलता प्राप्त की और कलकत्ता मे इसका आश्चर्यकारक प्रयोग कर दिखाया। सब चकित होकर रह गए।

इसके बाद डा० बोस ससार को अपना अनुभव बताने और ससार के अविष्कारो का रहस्य जानने के लिए योरोप अमेरीका के भ्रमण को निकले। आक्सफोर्ड मे उन्हे व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया गया।

व्याख्यान मे बडे २ विज्ञानवेत्ता बुलाए गए। व्याख्यान भवन खचाखच भर गया था। बडे बडे दिग्गज विज्ञानाचार्य सुशोभित थे। डा० बोस का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। सब की आश्चर्य-भरी दृष्टि एक ओर खिच गई। उस समय कमरा चारो ओर की करतल ध्वनि और जयजयकार के शब्दो से गूज उठा। जब हमारे आचार्य ने एक यन्त्र द्वारा श्रोताओ के समक्ष एक पौधे से अपने आन्तरिक जीवन का हाल खुद कहलवाया और दिखलाया कि पौधो मे हृदय की स्पन्दन और रोधक गति होती है।

इस आश्चर्य-कारक दृश्य से बोस के कट्टर विरोधी भी समर्थक बन गए। डाही भी मित्र बन गए।

एक ही व्याख्यान से डा० बसु की कीर्ति पताका चारो ओर फहराने लगी। योरोप के भिन्न २ प्रसिद्ध स्थानो से आमत्रण पत्र आने लगे। योरोप के लोग उनके व्याख्यान सुनने और अद्भुत प्रयोग देखने के लिए लालायित हो उठे।

ग्रेटब्रटेन की ससार-प्रसिद्ध रायल इन्स्टीट्यूशन मे आमत्रित करने पर डा० बसु को तीन बार व्याख्यान के लिए जाना पड़ा, यह इन्स्टीट्यूशन योरोप मे अद्वितीय समझी जाती है। वहाँ के पहले ही व्याख्यान से डा० बसु के विषय मे कोई " पूरब के जादूगर " कोई " कलकत्ते का बसु जो खोज कर रहा है वह ऐसा मनुष्य है कि दूसरो के करने के लिए कुछ बाकी नही छोडता" आदि तरह २ की बाते कहने लगे। एक प्रसिद्ध पत्र ने लिखा— "वैज्ञानिक ससार डा० बसु की गवेषणाओ के लिए बहुत ही ऋणी है। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे व्याख्यानों मे भी बसु महोदय को पहले व्याख्यान से भी अधिक कीर्ति मिली। लोग उनके अद्भुत प्रयोगो को देख कर दातो तले उँगली दबाने लगे।

उनकी वैज्ञानिक गवेषणाओ और उनके क्रान्तिकारक आविष्कारो ने आधुनिक ससार के विचारों मे बडी हलचल पैदा कर दी है। उन्होने बिलकुल स्पष्ट रूप से दिखला दिया है कि अन्य जीवधारियो की तरह पौधो मे भी जीव है। उनमे भी सुख-दुख अनुभव करने की शक्ति मौजूद हैं। उन पर भी गर्मी सर्दी का अन्य जीवधारियों की तरह असर पडता है। जहरीली औषधियो और बिजली आदि का पूरा प्रभाव पडता है। यही नहीं डा० बोस ने सिद्ध कर दिया कि ससार मे द्रव्य एक ही है वे ही भिन्न २ रूपो से सजीव, निर्जीव नाम से पुकारे जाते है।

डा० जगदीशचन्द्र बोस ने जिन यत्रो द्वारा इतने अद्भुत और आश्चर्यकारक अविष्कार किये है। उन यत्रो के स्रष्टा भी आप ही है। उनके बनाने मे डा० साहब ने कमाल किया है। यत्रो की मृदुता और सूक्ष्मता देख कर आश्चर्य होता है। पौधो और धातुओ मे होने वाली सूक्ष्म से सूक्ष्म हलचल भी इन यत्रो से पता लग जाती है। प्रतिक्षण के उनके घटने बढने का परिणाम मालूम होता है। फिर यह देखिए कि इस प्रकार के यत्रा के बनाने के लिए योरोपियन कारीगरो के पास जो साधन होते है। वे डा० बसु के पास नही थे। उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा ने ही ये अद्भुत चमत्कार करवाए है।

भाँति २ के यत्र तयार करा कर डा० बसु ने बनस्पति विज्ञान का जैसा अनुशीलन किया है इस समय शायद ही किसी ने किया हो। उन्होने बिलकुल सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की ही भाँति तमाम गतियाँ बनस्पतियो मे भी होती है। उनको भी मृत्यु के समय बहुत कष्ट होता है। जब कोई पत्ता आग मे डाला जाता है। तब वह पहले सिकुडने लगता है फिर जल जाता है। यह सिकुड़ना क्या है? बनस्पति की मृत्युवेदना का चिन्ह है। बसु के आविष्कारो ने वर्त्तमान ससार मे नया प्रकाश फैला दिया है। उन्होने जीवन के उन गूढतम रहस्यो का उद्घाटन किया है जिनसे आधुनिक ससार बिलकुल अपरिचित था। उन्हाने वह प्रयोग प्रत्यक्ष कर दिखलाए है जिनके विषय मे बिना प्रत्यक्ष अनुभव के विश्वास ही नही हो सकता था। डाक्टर बसु का कहना है कि "इन अविष्कारो से शरीर-विज्ञान, औषधि-विज्ञान और कृषि ज्ञान मे भविष्य मे क्रान्तिकारक परिवर्तन होगे, तब इन आविष्कारों का महत्त्व भली भाँति प्रकट होगा"।

योरोप अमेरिका के अद्वितीय सम्मान को ही देख कर भारत

सरकार ने डा० बोस को सम्मानित किया है और सी० आई० ई०, सी० एस० आई की उपाधियो से विभूषित किया है। यही नही, सर की उपाधि भी आप को इसी सम्मान मे प्राप्त हुई है।

सुप्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता डा० प्रफुल्लचन्द राय का डा० वसु के विषय मे कहना है कि "डा० बसु केवल वैज्ञानिक सत्य के आविष्कारक ही नही, किन्तु नवयुग-प्रवर्त्तक है। वे एक महान पुरुष और नि स्वार्थ विज्ञान-वेत्ता हैं।"

योरोप मे जितने नए अविष्कार होते हैं वे सब पेटेट करा लिए जाते है। उन पर सब का समान अधिकार नही रहता। परन्तु सर्व-हितैषी त्याग-मूर्ति डा० बसु ने इसमे अपूर्व त्याग दिख लाया है। उन्होन अपना कोई आविष्कार पेटेट नही करवाया। नही तो प्रो० पी० सी० राय के शब्दो में "बसु महोदय सचमुच आज कितने ही करोड रुपयो के स्वामी हो गए होते। बेतार के तार के अविष्कार मे डा० बसु का महत्व समझ कर ग्रेट ब्रेटन और अमेरिका की सरकार ने आप को अपने आविष्कारो के रजिस्टर्ड करने का अधिकार दिया था पर बसु महोदय ने अपने लाभ के लिए उनको उपयोग मे लाना उचित न समझा, स्पष्ट उत्तर दिया कि ऐसा करना मेरे पूर्वजो की नीति और धर्म के विरुद्ध है। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र ने भी इस विषय मे लिखा है कि "यह बात उल्लेखनीय है कि डा० बसु ने अपने यत्र-निर्माण की कोई क्रिया गुप्त नही रक्खी है, सारे ससार के लिए खुली हुई है। ससार के अर्थ-उपार्जन करने के लिए मि० बास ने यह महान त्याग किया है।"

ससार के भिन्न २ देशो मे भ्रमण करके और अपनी कीर्ति पताका चतुर्दिश फहराकर के सर जगदीशचन्द्र बोस ने वास्तव मे

भारत माता के मुख के उज्ज्वल किया है। भारत माता को इस बात का गर्व है कि वैज्ञानिक ससार का एक अद्वितोय पुरुष आज भी उसकी गोद मे खेल रहा है। माता की गौरव-रक्षा के लिए ही बोस ने अपने को कही बेंचा नही। नही तो आज भी येरोप का प्रत्येक विश्व-विद्यालय हाथ पसारे आप को भेंटने के लिए तैयार है। बोस महोदय को प्रारम्भ से ही इस बात का विचार रहा है कि यह भारतवर्ष किसी समय विद्या और ज्ञान का केन्द्र समझा जाता था। देश देशान्तरो के हजारो विद्यार्थी हमेशा अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए यहा आया करते थे। यहा के ऐम्‌ बडे विश्व-विद्यालय ससार के किसी भाग मे न थे, न अब तक है। भारतवर्प ने अपनी श्रेष्टता ससार को बिना प्रतिफल की इच्छा के खुले हाथो लुटाई है और इसी मे उसने अपना गौरव समझा है। ससार को निस्पृह ज्ञान दान देना ही भारत की शिक्षा दीक्षा का आदर्श रहा है। सारे ससार का एक 'गुरु' कहलाने का गौरव यदि किसी को प्राप्त है तो वह भारत वर्ष ही है। परन्तु समय के हेर फेर और अविद्या अन्धकार के फैलने से आज इसकी यह गति हो गई है। ऐसी गिरी दशा मे भी जो हमारे पास है उसको विशेष रूप से भारत मे ही स्थान क्यों न दें। क्यो न उसके विषय मे ससार की दृष्टि भारतवर्ष की ही ओर खीचे। इन्ही सब बातो को विचार कर डाक्टर बसु ने एक विज्ञान-मदिर स्थापित किया है जो सदैव उनकी महत्ता का वृहत स्मारक होगा। यह ठीक है कि प्रारम्भ से ही उसमे भाँति २ की कठिनाइयो का अनुभव हुआ। एक अच्छी प्रयोग-शाला के अभाव मे वैज्ञानिको को जिन असुविधाओ का सामान करना पडता है बसु महोदय को उन सबका सामना करना पड़ा। परन्तु आप किसी कार्य मे हताश या विचलित होना तो जानते ही

नही। आप तो उन पुरुषो मे हैं जो विघ्नो को सफलता का कारण माना करते है। बराबर लेख लिखे। विश्वविद्यालयो का जो सचालक मिलता उसी से प्रश्न करते—"ज्ञान की किस शाखा का आपने विकाश किया है ? आप की सहायता से कौन २ आविष्कार और अन्वेषण हुए है ? क्या विश्व-विद्यालय हमेशा अन्य विश्वविद्यालयो के लिए केवल प्रोफेसर, विद्यार्थी और गुलाम बनाने की ही मशीन बने रहेगे ? क्या आप के दिल मे कभी यह बात नही पैदा होती कि आपके भारतीय विश्वविद्यालया मे विदेशो से झुड के झुड विद्यार्थी यहा आवे और वह ज्ञान प्राप्त करे जो ससार मे अपूर्व हो ? क्या आप नालन्द और तक्षशिला के विश्व विद्यालयो को बिलकुल भूल गए। इत्यादि

डा० बसु की बातो का लोगो पर बहुत प्रभाव पडता है और लोग सहज ही मे इनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। आप को अपने प्रयत्न मे उत्तरोत्तर बहुत कुछ सफलता प्राप्त होती जा रही है। विज्ञान-मदिर की स्थापना के समय डा० बसु ने अपने व्याख्यान मे कहा था—"जब तक भारतवर्ष की तरफ से कुछ देन न दी जायगी तब तक ससार के ज्ञान की उन्नति अधूरी ही रहेगी। और इस बात को समझ लेने से भारत के भावी कार्यकर्त्ताओ मे एक दिव्य उत्साह उत्पन्न होगा। यहाँ जो विज्ञान-मदिर स्थापित होगा वह बडी स्फूर्ति के साथ सत्य का पीछा करेगा। कोई सासारिक लोभ उसे अपने पवित्र मार्ग से च्युत न कर सकेगा। यहाँ विज्ञान और धर्म मे कोई झगडा न होगा जैसा पाश्चात्य देशो मे हो रहा है। अगर भारत ने वायु पर विजय प्राप्त की होती तो वह इसका प्रयोग तीर्थ यात्रा करने मे करता।"

आज धीरे २ सर जगदीश चन्द की उपर्युक्त उत्कट अभिलाषा प्रयोग मे लाई जा रही है। अवश्य एक दिन ऐसा आवेगा

जब ससार की एक टक दृष्टि विज्ञान-मदिर पर होगी और विदेशो से हजारो विद्यार्थी उसकी ओर आप से आप खिचे चले आवेंगे।

डा० बोस का स्वभाव बहुत ही मिलनसार और कोमल है। रहन सहन यथा सभव सादी है। अभिमान तो पास पडोस भी नही फटकता। वैज्ञानिक आविष्कार मे ससार के वैज्ञानिको मे डा० बसु सिर-मौर हो रहे हैं। जीवन के रहस्य का उद्घाटन करके उन्होने हमारे प्राचीन ऋषि मुनियो के सिद्धान्तो का प्रत्यक्ष पुष्टीकरण किया है। बचपन से ही उनकी नस २ मे भारत की महत्ता और वीरता समा गई है। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे चिरायु हो और उनकी अभिलाषा दिन दूनी रात चौगुनी फूलती फलती रहे जिससे भारत माता के गौरव को बढावे।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

के

अनमोल ग्रन्थ-रत्न

१—ईश्वरीय बोध

परमहस स्वामी रामकृष्ण जी के उपदेश भारत मे ही नहीं, तमाम ससार मे प्रसिद्ध हैं। उन्ही के उपदेशों का यह सग्रह है। श्रीरामकृष्ण जी ने ऐसे मनोरञ्जक और सरल, सब की समझ में आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। सचमुच मनुष्य ऐसी पुस्तक पढ कर अपने को बहुत उच्च बना लेता है। परिवर्द्धित सस्करण का मूल्य सिर्फ ।॥)

२—सफलता की कुंजी

अमेरिका, जापान आदि देशो मे वेदान्त का डका पीटने वाले तथा भारतमाता का मुख उज्ज्वल करने वाले स्वामी रामतीर्थ को सभी जानते हैं। यह पुस्तक उन्ही स्वामी जी के Secret of Success नामक अपूर्व निबन्ध का अनुवाद है यदि आप अपना जीवन सुखमय बनाना चाहते हैं और शातिसरोवर मे गोता लगाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढे। मूल्य ।)

३—मनुष्य जीवन की उपयोगिता

मनुष्य जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जाता सकता है ? इसकी उत्तम से उत्तम रीति आप जानना चाहते हैं तो एक बार इसे पढ जाइये। कितने सरल उपायो से जीवन पूर्ण सुखमय हो जाता है,यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। यह मूल पुस्तक तिब्बत के प्राचीन पुस्तकालय मे थी, जहा के एक चीनी ने इसका अनुवाद चीनी भाषा मे किया फिर इसका योरुप की अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओ मे अनुवाद हुए। आज दिन योरुप की प्रत्येक भाषा मे इसके हजारो सस्करण हो चुके है नया अभी हाल ही मे छपा है। डेढ सौ पेज की पुस्तक का मूल्य केवल ॥=)

४—भारत के दशरत्न

यह जीवनियो का सग्रह है। इसमे भीष्मपितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिह, समर्थ रामदास, श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवनचरित्र बडी खूबी के साथ लिखे गये है। मूल्य ।=)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है

को पढ कर सच्चरित्र पुरुष तो सदैव के लिये वीर्य नाश से बचता ही है किन्तु पापात्मा भी नि सशय पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल भी सिह तथा दुरात्मा भी साधु हो जाता है। जो पुरुष अपने को औषधियो का दास बना कर भी जीवन लाभ नही कर सका है, उसे इस पुस्तक मे बताये सरल नियमो का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा गृहस्थ या भारतपुत्र न होना चाहिये

जिसके पास ऐसी उपयोगी पुस्तक की एक प्रति न हो। थोडे ही समय मे इसके चार सस्करण हो चुके हैं। मूल्य ।।।)

६—वीर राजपूत

यह उपन्यास एक ऐतिहासिक घटना को लेकर बडे मनोरंजक ढग से लिखा गया है यदि राजपूताने के वीर राजपूतो के सच्चे पराक्रम और शूरवीरता की एक अपूर्व झलक आप को देखनी है, यदि आप यह जानना चाहते हैं कि एक सच्चा सदाचारी वीर पुरुष कैसे अपने उच्च जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है तो उपन्यास को एक बार अवश्य पढ जाइये। मूल्य १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?

भारतवर्ष मे औषधालयो और औषधियों की कमी नहीं, फिर भी यहा के मनुष्यों की आयु अन्य देशों की अपेक्षा सब से कम क्यो है ? औषधियो का विशेष प्रचार न होते हुये भी हमारे पूर्वजो की आयु सैकडो वर्ष की कैसे होती थी ? एक मात्र कारण यही है कि हमारे नित्य के खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारो में बर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम है जिन्हे हम भूल गये हैं "हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?" को पढ कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखो का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। हिन्दी मे इस विषय की आज तक कोई भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नही हुई। मू० ।।।)

८—महात्मा टाल्स्टाय की वैज्ञानिक कहानियां

विज्ञान की शिक्षा देने वाली तथा अत्यन्त मनोरजक पुस्तक। मूल्य ।)

९—वीरो की सच्ची कहानियां

यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है, यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते है, तो इसे पढ़िये। इसमे अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता पूर्ण यश गाथायें पढ़ कर आपका हृदय फड़क उठेगा, नसो मे वीर रस प्रवाहित होने लगेगा, पुरुषाओ के गौरव का रक्त उबलने लगेगा। स्कूल मे बालकों को इतिहास पढाने मे अपने पुरुषाओ की वीरता पूर्ण घटनाए नही पढ़ाई जातीं। विदेशी पुरुषो को प्रशसा के ही पाठ पढ़ाये जाते हैं। आवश्यकता है देश का कोई बालक ऐसे समय इस पुस्तक को पढने से न चूके। मूल्य केवल ॥।)

१०—आहुतिया

यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धम पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते है ? उनकी आत्माये क्यो इतनी प्रबल हो जाती है ? वे मर कर भी कैसे जोवन का पाठ पढ़ाते है ? इत्यादि दिल फड़काने वाली कहानियाँ पढनी हो तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। मूल्य केवल ॥।)

११—जगमगाते हीरे

प्रस्तुत पुस्तक हाथ में है। मू० १)

१२—पढो और हँसो

विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोट पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग

अकेले मे पढेंगे, पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह कहकहा हो रहा है। पुस्तक की तारीफ यह है कि पूरी मनोरजक होते हुए भी अश्लीलता का कही नाम नही। यदि शिक्षा-प्रद मनोरजक पुस्तक पढनी है तो इसे पढिये। मूल्य केवल ।||)

१३—कुसुम-कुञ्ज

कविवर गुरु भक्त सिंह 'भक्त' कृत कमनीय कविताओ का सग्रह है। ये कवितायें अपने ढग की एक ही हैं। मूल्य ।=)

१४—चारुचिन्तामणि कोष

इस पुस्तक मे श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के सब ग्रन्थो से उन भागो का सग्रह किया गया है जिनका सम्बन्ध श्री रामनाम से है। सग्रहकर्ता राम के अनन्य भक्त श्री जयरामदास जी हैं। पुस्तक अपने ढग की एक ही है। मूल्य ।—)

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

के

स्थायी ग्राहक बनने के नियम ।

(१) प्रत्येक सज्जन ॥) पेशगी जमा कर इस ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं । उन्हे प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक पर एक चौथाई कमीशन दिया जाता है ।

(२) पहिले की प्रकाशित पुस्तको का लेना अथवा न लेना ग्राहको की इच्छा पर निर्भर है । परन्तु भविष्य मे प्रकाशित होने वाली पुस्तको का लेना आवश्यक होगा । यदि सूचना पाते ही एक सप्ताह के अन्दर हमें सूचित कर देंगे तो वह पुस्तक न भेजी जायगी ।

(३) जो सज्जन सूचना पाके वी० पी० जाने पर उसे लौटा देंगे उनका नाम स्थायी ग्राहको की श्रेणी से काट दिया जायगा ।

हमारे यहा अन्य प्रकाशको की पुस्तके भी मिल सकेंगी । हम अपने स्थायी ग्राहको को अन्य प्रकाशको की ५) या इससे अधिक की पुस्तको पर फ़ी रुपया एक आना कमीशन देते है । वृहत् सूचीपत्र मगाकर देखिये ।

मैनेजर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागज-प्रयाग ।